इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD - 10

प्रेमचंद की कहानियाँ

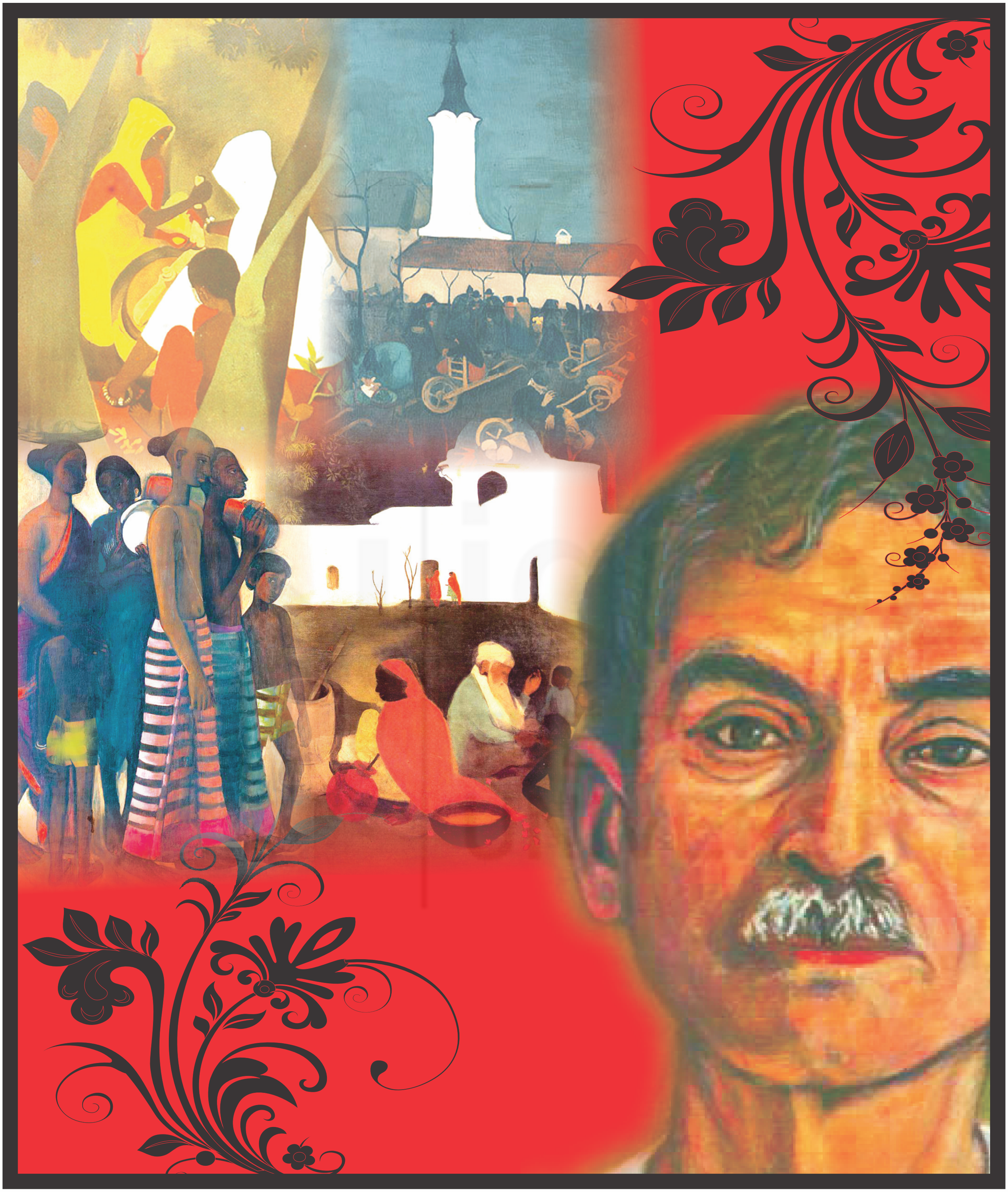

प्रेमचंद की कहानियाँ

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD-10
प्रेमचंद की कहानियाँ

खंड

4

इकाई 15

"सुजान भगत" : विश्लेषण और मूल्यांकन 5

इकाई 16

"दो बैलों की कथा" : विश्लेषण और मूल्यांकन 15

इकाई 17

"सवा सेर गेहूँ" विश्लेषण और मूल्यांकन 25

इकाई 18

"सद्गति" : विश्लेषण और मूल्यांकन 35

इकाई 19

"कफन" : विश्लेषण और मूल्यांकन 46

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
भारतीय भाषा केन्द्र जे.एन.यू., नई दिल्ली

श्री ज्ञानरंजन
जबलपुर, मध्य प्रदेश

प्रो. रामदेव शुक्ल
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
दी.,द.,उ.,गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

प्रो. लक्ष्मण सिंह बिष्ट बटरोही
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

प्रो. गोपाल राय
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

डॉ. विजय बहादुर सिंह
भोपाल, मध्य प्रदेश

संकाय सदस्य
प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रो. सत्यकाम
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
(पाठ्यक्रम संयोजक)

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

खंड संयोजन, संशोधन एवं संपादन

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई सं.
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी हिंदी विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, लखनऊ	15, 16
डॉ. सत्यकेतु सांकृत प्रोफेसर (हिन्दी) अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली	17
श्री कपिल देव गोरखपुर, उत्तर प्रदेश	18
प्रो. सदानन्द शाही हिंदी विभाग बनारस हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी, उत्तर प्रदेश	19

विशेष सहयोग : डॉ. नमिता सत्येन,
डॉ. वावळकर शिवदत्ता बाजीराव,
सुश्री भावना सरोहा

सचिवालयिक सहयोग: श्री मनोज कुमार सहनी

सामग्री निर्माण

सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)

अक्तूबर, 2016

© *इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय,* 2016

ISBN-978-93-86100-96-2

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सत्यकाम, निदेशक, मानविकी विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

Paper Used : “Agro based Environment Friendly”

लेजर टाइप सेटिंग : एच. डी. कंम्यूटर क्रॉफ्ट, डब्लु जैड 36ए, लाजवंती गार्डन, नई दिल्ली 110046

मुद्रक : अमेटी ऑफसेट प्रिंटर्स, 12/38, साइट-IV, साहिबाबाद इन्डस्ट्रियल एरिया, गाजियाबाद, (उ.प्र.)

पाठ्यक्रम का परिचय

यह कहानी संबंधी माड्यूलर के दूसरे पाठ्यक्रम 'प्रेमचंद की कहानियाँ' का चौथा खण्ड है। इस खण्ड में कुल पाँच इकाइयाँ हैं जो इस प्रकार हैं —

इकाई-15 ''सुजान भगत'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-16 ''दो बैलों की कथा'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-17 ''सवा सेर गेहूँ'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-18 ''सद्गति'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई-19 ''कफन'' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इस खण्ड में आप प्रेमचंद की किसान जीवन और दलित जीवन संबंधी कहानियों का अध्ययन करेंगे। सुजान भगत, दो बैलों की कथा, सवासेर गेहूँ, सद्गति और कफन प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ मानी जाती हैं। ये कहानियाँ प्रेमचंद की गहरी संवेदनशीलता और दूरदृष्टि की परिचायक हैं। इन कहानियों के विश्लेषण से गुजरने के बाद आप प्रेमचंद की किसान और दलित जीवन संबंधी समझ को ठीक ठंग से जान पाएँगीं/पाएँगें। इन कहानियों के विश्लेषण में प्रेमचंद की कहानी कला पर भी विचार किया गया है। हमें उम्मीद है कि इस खंड के अध्ययन के पश्चात आप प्रेमचंद की कहानियों के संदर्भ में एक व्यापक दृष्टिकोण बना पाएँगी/पाएँगे।

शुभकामनाओं सहित।

इकाई 15 "सुजान भगत" : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 कहानी का आशय

15.3 कहानी का शिल्प एवं भाषा

15.4 पारिवारिक यथार्थ बनाम 'सुजान भगत'

15.5 उपयोगिता बनाम स्वतंत्रता

15.6 मूक किसान की गौरव गाथा

15.7 सारांश

15.8 अभ्यास

15.0 उद्देश्य

'प्रेमचन्द की कहानियाँ' पाठ्यक्रम की 15वीं इकाई आपके सामने प्रस्तुत है। मुंशी प्रेमचन्द ने इस कहानी के माध्यम से एक मूक किसान की गौरव गाथा का वर्णन किया है। एक किसान की सद्‌िच्छा का वर्णन इस कहानी में किया गया है। परिवारों के यथार्थ का वर्णन भी इस कहानी के माध्यम से किया गया है कि परिवार जैसी प्राथमिक संस्था में उपयोगिता का सिद्धान्त किस तरह लागू होता है। एक व्यक्ति अगर श्रम द्वारा अपनी सार्थकता नहीं सिद्ध कर पाये तो उसके अधिकार स्वमेव छिनकर परिवार के दूसरे सदस्यों के हाथ में चले जाते हैं और वह अपने ही घर में अधिकारहीन सदस्य की तरह जीवन जीने को मजबूर हो जाता है एक ऐसे किसान के मनोविज्ञान का विशद अध्ययन इस कहानी के माध्यम से किया जा सकता है। और साथ-साथ–

- यह कहानी आदर्श के धरातल पर एक खास युग अथवा पुरानी तथा नई पीढ़ी के नैतिक संघर्ष को व्यक्त करती हैं अर्थात् पुरानी पीढ़ी, नई पीढ़ी की स्वार्थपरता को अपनी ताकत से चुनौती देती है और अन्ततः विजय को प्राप्त करती है।
- धर्म का एक व्यक्ति के जीवन में क्या महत्व है ? और इसका क्या प्रभाव है। अर्थात् इसके सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पक्षों से इस कहानी के अध्ययन से आप परिचित हो सकेंगे/सकेंगी;
- पारिवारिक संरचना में व्यक्ति की महत्ता एवं उसकी स्वतन्त्रता के विभिन्न आयामों से परिचय आप इस कहानी के माध्यम से प्राप्त कर सकते/सकती हैं;
- तत्कालीन समाज के किसान की वास्तविक मनोवृत्ति का वर्णन इस कहानी के माध्यम से प्राप्त होता है;
- इस कहानी के माध्यम से एक ग्रामीण समाज की राजनीतिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक संरचना का परिचय भी आप प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।

15.1 प्रस्तावना

मुंशी प्रेमचन्द की कहानियाँ बीसवीं सदी के भारत की प्रमाणिक तस्वीर है प्रेमचन्द हिन्दी कहानी विधा के युग प्रवर्तक कहानीकार हैं जिन्होंने युगीन सन्दर्भों और उससे बाहर की भी कहानियाँ लिखी हैं तथा मानव मूल्यों, मानवीय संवेदना तथा मानवतावादी दृष्टि की स्थापना की है। प्रेमचन्द सामाजिक यथार्थ को तो महत्व देते ही थे साथ-साथ वे अपनी लेखनी के माध्यम से आदर्श प्राप्ति की दिशा में भी सक्रिय थे। ये बदलते समय के सजग कलाकार थे इसीलिए उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है कि ''अब पाठक, कहानियों में नये भावों, नये विचारों तथा नये चरित्रों का दिग्दर्शन चाहता है। इन्हीं कारणों से ये नये पक्ष में खड़े होकर कहानी के एक ऐसे जातीय ढाँचे का निर्माण करना चाहते थे जिसमें सरलता हो, सजगता हो, प्रेम हो, करुणा हो तथा इन सबमें अपनी मिट्टी की सोंधी महक हो।''

'सुजान भगत' आदर्शवादी मानवतावाद की प्रेरणा से प्रेरित कहानी है, जिसे 'पंच परमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी', 'अलग्योझा' आदि की श्रेणी में रखा जा सकता है। प्रेमचन्द के युग का यह आदर्श राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन एवं उसके प्रमुख नेता महात्मा गाँधी की देन थी जबकि इनका यथार्थ किसान तथा मजदूर के जीवन संघर्ष की परिणिति है। इनका आदर्श भी कोरा आदर्श नहीं है बल्कि वह यथार्थ की ओर उन्मुख आदर्श है जिसमें विकास की प्रकृति शामिल है। आदर्श और यथार्थ का यह द्वन्द्व इनका अन्तर्विरोध नहीं है बल्कि तत्कालीन त्रासद समाज को समग्रता में देखने की स्वाभाविक मजबूरी है। 'पूस की रात', 'सद्गति', 'दूध का दाम' तथा 'कफन' जैसी कहानियों में यथार्थवादी तेवर नजर आता है।

'सुजान भगत' कहानी 'सुजान' के इर्द गिर्द ही घूमती रहती है, यही इस कहानी का केन्द्रीय चरित्र है जिसके दिल, दिमाग और बूढ़ी हड्डियों में गजब का जोर है जो विकासात्मक आदर्शवाद का प्रतीक है और ताकत भी, इसी ताकत से यह न सिर्फ अपने अधिकारों की रक्षा करता है बल्कि वह एक पूरी युवा पीढ़ी की स्वार्थ परता एवं उसके अहं को नीचा दिखाता है। 'पंचपरमेश्वर' में भी आदर्शवाद है, न्याय के तख्त पर बैठते ही जुम्मन शेख का हृदय बदल जाता है और वह अपने बदले की भावना को भूल जाता है परन्तु यह हृदय परिवर्तन 'सुजान भगत' के परिवर्तन से भिन्न है इसमें स्वार्थ की लिप्सा है और सुजान के हृदय परिवर्तन में कर्त्तव्य एवं अधिकार का पुट है।

प्रेमचन्द राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वरूप तथा चरित्र के गुणात्मक बदलाव के प्रति न केवल जागरूक थे बल्कि वे स्वयं 'जागरण' जैसे पात्रों के माध्यम से गाँधी जी के अपने विचारों तथा कार्य-नीति के प्रति शंका व्यक्त करते हुए स्वाधीनता आन्दोलन के स्वरूप और चरित्र में गुणात्मक बदलाव की बात भी करते थे। वे जानते थे कि समाजवादी विचारों के प्रभाव के बावजूद राष्ट्रीय आन्दोलन का मुख्य नेतृत्व अपने विचारगत अन्तर्विरोधों से मुक्त नहीं हो सका था। वे यह भी जानते थे कि अपने वर्ग चरित्र के चलते राष्ट्रीय आन्दोलन का मुख्य नेतृत्व किस तरह से किसान-मजदूर और साधारण जनता की जिन्दगी से जुड़े सवालों को हाशिए पर डालते हुए अर्थात् सामाजिक सरोकारों तथा आर्थिक हितों को दरकिनार करके महज राजनीतिक स्तर पर, राजनीतिक सत्ता हस्तान्तरण पर केन्द्रित कर राजनीतिक सत्ता भर हथियाना चाहते हैं। इस विचलन को मुंशी प्रेमचन्द विभिन्न लेखों एवं टिप्पणियों के माध्यम से प्रकट कर रहे थे। इस प्रकार अगर देखा जाय तो 'सुजान भगत' एक किसान के माध्यम से तत्कालीन बृहत्तर कृषक समाज के लोगों की कहानी है जिन्हें यह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रहने की सीख सी देती है। मुंशी प्रेमचन्द की अधिकांश कहानियों में घटनाओं की बहुलता है जो कथ्य को प्रायः पुष्ट सी

करती है प्रेमचन्द 'है' के साथ 'जो होना चाहिए' का भी संकेत प्रायः दे दिया करते हैं। इनका मनुष्य और उसकी प्रवृत्तियों पर गहरा विश्वास था इसीलिए इनका यथार्थवाद कभी भी आदर्शवाद का बहिष्कार नहीं करता है। प्रेमचन्द जी सामन्ती व्यवस्था के जबरदस्त विरोधी थे वे गाँवों की पिछड़ी दशा से बहुत चिन्तित रहते थे। ग्रामीण संरचना, ग्रामीण दशा, जाति प्रथा, छुआछूत, गरीबी, शोषण अत्याचार आदि-आदि स्थितियाँ इनकी कथा का आधार हुआ करती हैं चाहे वह उपन्यास हो या कहानी।

'सुजान भगत' अपने कथ्य एवं संरचना के द्वारा एक मूक एवं समर्थ किसान की गौरवपूर्ण उपलब्धि का सशक्त दस्तावेज हैं, जिसमें नीति है, धर्म है, प्रेम है, तिरष्कार है, संवेदना है, द्वन्द्व है। यह कहानी उपरोक्त सभी बिन्दुओं पर विशद् विचार हेतु हमें प्रस्तावित करती है।

15.2 कहानी का आशय

सुजान भगत एक बड़ा ही उदार एवं परिश्रमी प्रकृति का किसान था, जिसके परिश्रम से उसकी खेती सोना उगलने लगी थी और कुछ धन आ जाने के बाद उसकी वृत्ति धर्म की ओर झुकने लगी। उसके घर पर अनेक साधु सन्त, हाकिम अफसर आने व रहने लगे, स्थिति यह थी कि सुजान के घर पर ढेर सारा दूध होता था परन्तु वह एक बूँद भी चखता नहीं था। सुजान अत्यन्त विनम्र भाव से रहने लगा था जिससे कि कोई यह नहीं कह सके कि उसे धन का घमण्ड हो गया है जबकि उसने गाँव में पानी की समस्या निबटाने हेतु कुआँ भी खुदवाया। इसी बीच एक दिन सुजान की इच्छा गया जाने की हो गयी। पत्नी के विरोध को अपने तर्कों से काट कर वह गया तर्पण करने जाता है और लौट कर वह यज्ञ और ब्रह्मभोज का आयोजन करता है उसकी इस स्थिति से गाँव के कुछ लोग जलने भी लगे थे।

गया से लौटने के बाद सुजान महतो, 'सुजान भगत' हो गये। नियम-संयम से रहने लगे, झूठ बोलना त्याग दिये एवं सत्कार्य पर बल देने लगे। सुजान भगत अब जड़ जगत से निकलकर चेतन जगत में प्रवेश कर गये तथा ब्याज लेना भी अब वे गुनाह मानने लगे। इधर परिवार में सुजान भगत से अब अधिकार छिनने लगे। मसलन घर में क्या होना है? खेत में क्या बोना है? किसे क्या देना है? आदि-आदि। सुजान के अन्दर दान, धर्म की प्रवृत्ति बहुत बढ़ गयी थी। उसकी पत्नी सुलाकी और बेटा भोला अब उसकी इस प्रवृत्ति का विरोध करने लगे थे और इस बाबत सुजान को भला बुरा सुनाने लगे थे। एक दिन तो भिक्षा देने हेतु जब सुजान अनाज लेकर चलने लगा तब उसका बेटा भोला उसके हाथ से अनाज छीन लेता है और उसे उलट शिक्षा देने लगता है कि भीख, भीख की तरह दी जाती है.........।

इसके बाद सुजान भगत को अपनी स्थिति पर घोर चिन्ता होती है तथा वह मन ही मन अपनी पत्नी को कोसता है क्योंकि बेटे को अगर छोड़ भी दो तो पत्नी तो अपनी है वह भी अब मेरी नहीं बेटों का साथ दे रही है। फिर उसने अपने परिश्रम से अपना अधिकार पाने का निर्णय लिया और बिना कुछ खाये-पिये अपने खेतों में जाकर कठोर परिश्रम करने लिगा, जिसे देखकर उसकी पत्नी व बेटे दोनों दंग रह गये। एक बार फिर सुजान के कठोर परिश्रम से उसकी खेती में सोना बरसने लगा इसे देखकर गाँव वालों को ईर्ष्या भी हुई। धीरे-धीरे सुजान भगत को उसके परिवार में छिने अधिकार फिर मिलने लगे और वह पैदावर में दिल खोलकर दान करने लगा। अब उसके पत्नी और बच्चे में बोलने की हिम्मत न थी। इस प्रकार उसने अपनी लगन और परिश्रम से न सिर्फ अपनी पैदावार बढ़ा

ली बल्कि वह इससे अपने बेटे व पत्नी के दंभ को तोड़ भी दिया और अपने अधिकार को पुनः प्राप्त कर लिया।

15.3 कहानी का शिल्प एवं भाषा

डॉ0 रामविलास शर्मा के अनुसार ''भारतीय कथा-साहित्य की जातीय परम्परा से प्रेमचन्द की कहानियों का बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। कहानी फुरसत की चीज है, काम-धाम से छुट्टी पाकर सुनने की चीज, और जल्दबाजी से काम बिगड़ जाता है। प्रेमचन्द के कहानी कहने में वह फुरसत का भाव मिलता है वह कहानी सुनाते हैं, अक्सर लच्छेदार जुबान में, वाक्यों को स्वाभाविक गति से फैलने की आजादी देकर, अंग्रेजी बाग के माली की तरह उनकी डालियां और पत्ते कतर कर नहीं, फूलों और पत्तियों को हवा में बढ़ने और लहराने की आजादी देकर। जिन्दगी के अनुभवों पर टीका-टिप्पणी भी साथ में चला करती है, व्यंग्य अनूठी उपमायें और हास्य बीच-बीच में पाठक को गुदगुदाते रहते हैं।'' यही कहानी कहने का प्रेमचन्द का अपना अंदाज है, जहाँ सहजता है, सरलता है, जातीयता है, प्रेम है, संवेदना है आदि-आदि।

'सुजान भगत' को अगर देखा जाय तो इसका प्रारम्भ मुंशी प्रेमचन्द एक टिप्पणी के साथ करते हैं ''सीधे-सादे किसान धन हाथ आते ही धर्म और कीर्ति की ओर झुकते हैं।'' और फिर सूचनात्मक एवं वर्णनात्मक अंदाज में कहानी का पहला पैरा विस्तार पाता है जिसमें 'सुजान' के व्यवहार एवं स्वरूप के साथ-साथ उसके घर एवं समाज का संक्षिप्त विवेचन प्राप्त होता है। ''बूढ़ी काकी'' अथवा ''दो बैलों की कथा'' आदि की तरह इसका प्रारम्भ रोचक अंदाज में नहीं बल्कि नीतिपरकता के साथ शुरू होता है। बड़े ही सरल सहज तरीके से छोटे-छोटे पैरा एवं खंडों के माध्यम से कहानी अपने विस्तार को प्राप्त करती है। पूरी कहानी में प्रसंग से उत्पन्न विभिन्न परिस्थितियाँ हैं जिसमें विचारों एवं भावों के साथ-साथ संवेदनाओं का क्रमिक विस्तार है।

खण्ड दो का प्रारम्भ एक सूचना के साथ होता है– ''सुजान महतो'', सुजान भगत हो गये।'' यह है कहानी का प्रेमचन्दी शिल्प, जहाँ बात को अत्यन्त सरल तरीके से कहा भर जाता है। तीसरे खण्ड का प्रारम्भ– ''एक दिन बुलाकी दाल छाँट रही थी।'' चौथे का प्रारम्भ– ''सुजान के सामने अब एक नई समस्या खड़ी हो गयी थी। ''पाँचवें खण्ड का प्रारम्भ– ''सुजान भगत के इस नवीन उत्साह पर गाँव में टीकाएँ हुई।'' और कहानी का अंत– ''वृद्ध पिता ने उसे परास्त कर दिया था।'' अर्थात् प्रत्येक खण्ड का प्रारम्भ और कहानी का अंत बड़े ही साधारण किन्तु प्रभावी तरीके से प्रतीत होता है जो मुंशी प्रेमचन्द की अपनी विशेषता है। इस खाँचे के भीतर कहानी विस्तारित होती है। संवाद की दृष्टि से देखें तो प्रेमचन्द की कहानियों में पात्रों के संवादों से ही चरित्र उजागर होता है। 'सुजान भगत' भी इसका अपवाद नहीं है। यहाँ भी बुलाकी, भोला स्वयं सुजान आदि के संवाद उसके चरित्र को उजागर करते हैं। इस कहानी के प्रत्येक स्थिति और प्रसंग का निर्माण कल्पना मात्र से नहीं हुआ है बल्कि उसके पीछे जीवन का यथार्थ एवं समाज की सच्चाई छुपी हुई है। कहानी के बीच-बीच में प्रेमचन्द अपनी टिप्पणियों को भी पात्रों के क्रिया-कलापों के माध्यम से पुष्ट करते हैं।

प्रेमचन्द की भाषा उनके रचना शिल्प की एक प्रमुख विशेषता है। इनकी भाषा, सरल, सुबोध, व्यंजक और पारदर्शी है जो बात को ज्यों का त्यों पाठक के दिलो दिमाग पर अंकित करने में मदद देती है। इनकी भाषा में एक प्रवाह है जो अनुभव की उपज होता है जहाँ पर कोई वक्रता या गाँठ नहीं है। ''सुजान भगत'' कहानी में कोई भी ऐसा शब्द

नहीं आया है जिसने कथा के प्रवाह में बाधा पहुँचायी हो बल्कि कुछ शब्द या वाक्य प्रवाह को विस्तार ही देते प्रतीत होते हैं। संक्षेप में कहें तो संरचना अथवा बुनावट तथा भाषिक दृष्टि से यह कहानी अत्यन्त सरल एवं बोधगम्य है।

15.4 पारिवारिक यथार्थ बनाम 'सुजान भगत'

परिवार भारतीय समाज की प्राथमिक इकाई है। मुंशी प्रेमचन्द अपने सम्पूर्ण लेखन में नगर, समाज अथवा उच्च वर्गीय समाज से अलग हटकर व्यापक ग्राम समाज, अथवा मजदूर तथा किसान के जीवन की दशा एवं दिशा के कहानीकार हैं। 'सुजान' एक साधारण दर्जे का किसान था। उसके परिवार में उसकी पत्नी के अतिरिक्त दो बेटे थे। सुजान के परिश्रम से उसकी खेती में खूब पैदावार होती थी। पूरा परिवार सुजान पर आधारित था। कुछ पैसे सुजान के हाथ में आते ही उसकी वृत्ति धर्म की ओर मुड़ गयी और वह साधु संतों का अपने घर पर सत्कार करने लगा तथा अब अनेक सरकारी कर्मचारी सुजान के घर पर ठहरने लगे पूरा गाँव सुजान के कृत्य से प्रभावित था वह गाँव में पानी की समस्या से निपटने के लिए कुआँ खुदवाता है तथा पानी आ जाने पर वह अतिशय खुश होता है गाँव में यज्ञ तथा ब्रह्मभोज कराता है। गया से लौटकर सुजान महतो, 'सुजान भगत' हो जाता एवं धार्मिक कार्यों की ओर उन्मुख हो जाता है। परिवार के शेष सदस्य इससे रुष्ट से रहते हैं। सुजान परिवार का मुखिया होकर भी अब अपने अधिकार खोने लगा था। एक दिन जब उसकी पत्नी बुलाकी ओखली में दाल छाँट रही थी, द्वार पर एक भिखमंगा भीख हेतु गुहार लगा रहा था। इस पर सुजान भगत का बेटा माँ से कहता है कि माँ! तुम भिखमंगे को भीख दे दो। इस पर बुलाकी उपेक्षित भाव से कहती है; ''भगत के पाँव में मेंहदी लगी है, क्यों कुछ ले जाकर नहीं दे देते ? क्या मेरे चार हाथ हैं ? यहाँ प्रथम बार महतो के मुखिया होने का भ्रम टूटता है। अन्यत्र जब भोला अर्थात् सुजान का बेटा अपने पिता की बात के अवहेलना का एक सन्दर्भ माँ को बताता है तब माँ कहती है-''बहुत अच्छा किया तुमने, बकने दिया करो। दस-पाँच दफे मुँह की खा जायेंगे, तो आप ही बोलना छोड़ देंगे।'' फिर सुजान का बेटा भोला कहता है, ''दिन भर एक न एक खुचड़ निकालते रहते हैं। सौ दफे कह दिया कि तुम घर गृहस्थी के मामले में न बोला करो, पर इनसे बिना बोले रहा नहीं जाता।'' यह है सुजान के परिवार में उसकी स्थिति का नग्न यथार्थ, जहाँ मुखिया को ही बोलने तक की आजादी पर प्रतिबन्ध लगाने की बात कही जाती है और हद तो तब हो जाता है जब भिखारी के चिल्लाने के बाद भी कोई उसे भिक्षा नहीं देता है तो सुजान उठकर घर के अन्दर जाता है और पत्नी से प्रतिवाद करता है और फिर एक छबड़ी जौं भरकर उसे चुटकी में पकड़कर भिखारी को देने के लिए चलता है। छूटकर हाथ से छबड़ी गिर न पड़े इसलिए वह तेजी से चलता है ''सहसा भोला ने छबड़ी उसके हाथ से छीन ली और त्यौरियां बदल कर बोला-''सेंत का माल नहीं है, जो लुटाने जाते हो। छाती फाड़-फाड़ कर काम करते हैं, तब दाना घर में आता है।'' सुजान इसके बाद खिसिया जाता है और फिर वह भिखारी को बहाना बनाकर वापस भेज देता है। तदुपरान्त वह वृक्ष के नीचे बैठकर सोचता है-''अपने ही घर में यह अनादर! अभी वह अपाहिज नहीं है, हाथ पाँव थके नहीं हैं, घर का कुछ न कुछ काम करता ही रहता है। उस पर यह अनादर! उसी ने घर बनाया यह सारी विभूति उसी के श्रम का फल है, पर अब इस घर पर उसका कोई अधिकार नहीं रहा। अब वह द्वार का कुत्ता है, पड़ा रहे और घरवाले जो रूखा दे दें वह खाकर पेट भर लिया करे। ऐसे जीवन को धिक्कार है।'' यह कहानी का प्रथम पक्ष है जहाँ तक आकर पुरानी पीढ़ी का नेतृत्व कर्ता सुजान अपने अनादर के कारण विद्रोह या यूँ कहें की चुनौती स्वीकार करने पर उतर आता है और घोषणा करता है ''सुजान ऐसे घर में नहीं रह सकता।'' इस 'ऐसे घर' के पीछे ही आस्था/अनास्था, अच्छे/बुरे, नये/पुराने सभी का

द्वन्द्व छुपा है। सुजान, कहानी के द्वितीय पक्ष में पुनः नयी चेतना एवं ऊर्जा से जागता है अथक परिश्रम करता है फिर धन धान्य उपजाता है तथा अपनी पत्नी तथा बच्चों का मुख बन्द कर देता है और अपने लगन तथा परिश्रम से पुनः वह अपने ही घर में अपने अधिकारों को प्राप्त करता है। इस विडम्बनापूर्ण चित्र के माध्यम से प्रेमचन्द ने परिवारों के तनाव एवं बिखराव के सूत्र भी प्रस्तुत किये हैं तथा उसकी एकजुटता की जरूरत पर संकेत भी दिया है। मुंशी प्रेमचन्द अपनी कहानियों में व्यक्ति को सिर्फ व्यक्तिगत परिप्रेक्ष्य में न देखकर सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखते हैं और अहंवाद तथा वैयक्तिकता को मनुष्य की जड़ता और पतन का कारण मानते हैं। 'सुजान भगत' के माध्यम से भी प्रेमचन्द ने संयुक्त परिवार के नग्न यथार्थ की ओर संकेत करते हुए उसके आदर्श रूप की संकल्पना भी प्रस्तुत की है जहाँ मानवता के शाश्वत मूल्य उज्ज्वल हों और सामाजिकता की भावना को बल मिले।

15.5 उपयोगिता बनाम स्वतन्त्रता

आज के समय में अगर हम पारिवारिक एवं सामाजिक सन्दर्भ में व्यक्ति को देखें तो स्पष्ट है कि अगर व्यक्ति उपयोगी है विशेषकर आर्थिक दृष्टि से, तो उसकी स्वतन्त्रता और सत्ता का स्वरूप कुछ और होगा और अगर वह आर्थिक दृष्टि से कम उपयोगी होगा तो उसकी स्वतन्त्रता का स्वरूप कुछ और होगा। उपयोगिता का यह सिद्धान्त तो अनादि काल से विविध सन्दर्भों में लागू होता चला आया है। 'सुजान भगत' कहानी में अगर हम देखें कि जब कहानी शुरू होती है तब सुजान की स्वतन्त्रता का रूप कुछ और है क्योंकि वह उपयोगी था जैसे, ''मेहनत तो गाँव के सभी किसान करते थे, पर सुजान के चन्द्रमा बली थे, ऊसर में भी दाना छींट आता तो कुछ न कुछ पैदा हो जाता था।'' सुजान के उसी घर में जहाँ उसे भीख देने से रोका जाता है, एक समय था जब वह साधु संतों का, कानूनगो का, हल्के के हेड कांस्टेबल का, थानेदार का, शिक्षा विभाग के अन्य अफसरों का उसके चौपाल में जमावड़ा लगा रहता था। 'जिन हाकिमों के साथ में सुजान का मुँह तक नहीं खुलता था वही अब सुजान को 'महतो-महतो' कहने लगे थे। गाँजे और चरस की बहार उड़ने लगी थी, ढोलक, मजीरे मंगाये जाते थे और सत्संग होता था। पूरे गाँव के साथ उसका अपना परिवार भी उसके इस क्रियाकलाप पर कुछ नहीं बोलने की स्थिति में था। सुजान की पत्नी बुलाकी भी सुजान की हाँ में हाँ मिलाती थी। इस समय सुजान अपने पारिवारिक सन्दर्भों में उपयोगी था इसलिए वह उपरोक्त क्रियाविधि सम्पन्न करने के लिए स्वतन्त्र था और इस समय सुजान प्रत्येक परिस्थिति को स्वार्थ से नहीं बल्कि औचित्य से तोलने लगा था ब्याज भी लेने में उसे आत्मग्लानि होने लगी थी। यहाँ तक कि गाँव छोटे मोटे झगड़े भी वह निपटवा दिया करता था।

परन्तु धीरे-धीरे सुजान भगत की उपयोगिता परिवार में घटने लगी क्योंकि अब वह पारिवारिक कार्यों में समय कम देने लगे। उनकी जगह उनके बेटों ने ले ली थी। अतः अब सुजान भगत की स्वतन्त्रता कम होने लगी थी और इसी उपयोगिता के तक्र से ही इनके अधिकार कम होते चले गये। जैसे, ''किस खेत में क्या बोना है? किसको क्या देना है? किससे क्या लेना है? किस भाव क्या चीज बिकी? ऐसी बातों में भी भगत की सलाह न ली जाती थी।'' और इसी अनोपयोगिता के कारण ही सुजान की पत्नी भी अपने मुखिया पति के प्रति उपेक्षा का भाव प्रदर्शित करती है और वह बड़ा ही व्यावहारिक किन्तु स्वार्थपरक दृष्टिकोण को अपनाकर अपने बेटों का पक्ष लेना प्रारम्भ कर देती है और समय-समय पर सुजान से प्रतिवाद भी करती है जैसे; ''बुलाकी-गालियाँ दोगे तो मैं भी कुछ कह बैठूँगी। सुनते थे कि मर्द बड़े समझदार होते हैं परन्तु तुम सबसे न्यारे हो। आदमी को चाहिए कि जैसा समय देखें वैसा काम करे। अब हमारा तुम्हारा निबाह इसी

में है कि नाम के मालिक बने रहें और वही करें जो लड़कों को अच्छा लगे। मैं यह बात समझ गयी, तुम क्यों नहीं समझ पाते ? जो कमाता है घर में उसी का राज होता है, यही दुनिया का दस्तूर है। मैं बिना लड़कों से पूछे कोई काम नहीं करती तुम क्यों अपने मन की करते हो ? इतने दिनों तक राज कर लिया अब क्यों इस माया में पड़े हो ? आधी रोटी खावो, भगवान का भजन करो और पड़े रहो।''

उपरोक्त संवाद से साफ-साफ जाहिर है कि जितनी उपयोगिता उतनी स्वतन्त्रता यही बात बुलाकी दार्शनिक अंदाज में सुजान को समझाती है परन्तु सुजान का दर्शन इससे भिन्न था वह कर्म का दर्शन था जहाँ कर्म करके अपनी उपयोगिता पुनः सिद्ध करनी थी और अपने को स्वतन्त्र बनाकर अपने अधिकारों को हस्तगत करना था। वह इस नई पीढ़ी से चुनौती स्वीकारते हैं और उन्हें दिखाते हैं कि चारा कैसे काटना चाहिए, हल कैसे जोतना चाहिए, श्रम कैसे करना चाहिए आदि-आदि। सुजान के नवीन मेहनत की चर्चा होती है और इन्हें 'भूत' की भारी भरकम संज्ञा दी जाती है। समय करवट लेता है सुजान के खेतों में पुनः सोना उगने लगा। यहाँ फिर भिक्षुक का प्रसंग आता है कि फिर भिक्षुक आता है तो सुजान उसे अपनी शक्ति भर अनाज ले जाने की बात कहते हैं जैसे, ''तुमसे जितना उठ सके, उठा लो।'' भिखारी संकोच करता है कि कही मैं भरूँ और सुजान का बेटा भोला उसे उठाने न दे और मेरा अपमान करे परन्तु फिर सुजान स्वयं उसकी गठरी को भरता है और उससे (भिखारी से) न उठने की स्थिति में स्वयं उठाकर भिखारी के पीछे-पीछे चल देता है और उसका बेटा भोला सिर झुकाकर खड़ा रह जाता है। इस प्रकार से सुजान अपनी उपयोगिता पुनः सिद्ध कर अपने अधिकार अपनी स्वतन्त्रता को हासिल कर लेता है।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि 'सुजान' ने जो यह स्वतन्त्रता हासिल की उसका स्वरूप शांतिपूर्ण एवं कर्मशील प्रवृत्ति का है वह चाहता तो अपने पत्नी और बच्चों को डाँट-डपटकर, सम्पत्ति से बेदखल करने की धमकी देकर अपनी बात को मनवा सकता था परन्तु लेखक की मंशा तो कुछ और ही थी इसी के मातहत पात्रों का व्यवहार भी नियंत्रित था। मुंशी प्रेमचन्द का महात्मा गाँधी के प्रति आकर्षण स्वाभाविक रूप से था उन्होने स्वयं कहा था ''मै महात्मा को सबसे बड़ा मानता हँ उनका भी उद्‌देश्य यही है कि मजदूर और काश्तकार सुखी हों और मैं भी लिखकर उन्हें सुखी बनाना चाहता हूँ। वे हिन्दू और मुसलमान की एकता चाहते हैं, तो मै हिन्दी और उर्दू को मिलाकर हिन्दुस्तानी में लिखता हूँ।'' प्रेमचन्द की स्वतन्त्रता सम्बन्धी परिकल्पना में अनेक लोग थे जो समाज के हाशिए पर रहने के लिए विवश थे। वहीं मेहनत करते-करते मरने के लिए विवश और यही उनकी नियति थी जिसका समाज के प्रभु या उच्च वर्ग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। गाँधी जी भी यही चाहते थे कि समाज में हाशिए के लोग प्रमुख हो जाय और प्रेमचन्द जी का सम्पूर्ण रचना कर्म भी इसी इच्छा का द्योतक है। प्रेमचन्द का स्वाधीनता प्रेम बहुत गहरा है। उसे साकार करने की दिशा में उनका संघर्ष बहुआयामी है, 'सुजान भगत' का 'सुजान' एवं उसका मूक संघर्ष भी प्रेमचन्द के स्वाधीनता प्रेम का एक आयाम है। इसी स्वाधीनता के समर्थन के कारण प्रेमचन्द सिर्फ ब्रिटिश उपनिवेश के खिलाफ नहीं थे बल्कि स्वदेशी सामन्तवादिता के भी सख्त खिलाफ थे जिसके तहत उनकी दृष्टि में ''यहाँ मजदूर, किसान व काश्तकार टूटे हुए दिखायी देते हैं।'' प्रेमचन्द वस्तुतः एक तरीके के सांस्कृतिक परिवर्तन के पक्षधर थे और ये यहाँ आन्दोलन चाहते थे। स्वतन्त्रता का सतही स्वरूप इन्हें स्वीकार नहीं था बल्कि ये इसके गहरे स्वरूप के पक्षधर थे। 'सुजान' अपने परिवार में अपनी पत्नी और बच्चे की इच्छा से भी अगर चलता तो उसका पेट भरता रहता परन्तु वह मात्र पेट भरने या जीने तक की इच्छा नहीं रखता

था वरन् वह पूर्ण अधिकार की स्वतन्त्रता के साथ जीना चाहता है। इसी के निमित्त वह पूरी पीढ़ी से संघर्ष करता है तथा अपने मंतव्य तक पहुँचता है।

15.6 मूक किसान की गौरव गाथा

वैसे तो प्रेमचन्द ने अपने रचनात्मक लेखन में तमाम बुनियादी समस्याओं को समेटा है जिनका विषय क्षेत्र है; व्यापक और विस्तृत सामाजिक जीवन परन्तु सामाजिक जीवन के यथार्थ और साधारण जनता के जीवन सन्दर्भों से गहरे जुड़ाव के कारण प्रेमचन्द सर्वप्रथम समाज के सर्वाधिक शोषित एवं दलित वर्गों पर अपनी दृष्टि डालते हैं। प्रेमचन्द के सम्पूर्ण रचना संसार पर अगर दृष्टि डालें तो स्पष्ट है कि उनमें किसान, स्त्री, और दलित जीवन की त्रिवेणी सर्वत्र प्रवाहमान है। 'सुजान भगत' कहानी का केन्द्रीय पात्र 'सुजान' एक किसान है। महात्मा गाँधी बार-बार इस बात को दुहराते थे कि "भारत मूलतः कृषितन्त्र पर आधारित एक ग्राम प्रधान देश है।" प्रेमचन्द इस सत्य को हृदय से स्वीकारते थे और विभिन्न कहानियों में इसे व्यक्त करते थे।

वर्ष 1927 में 'सुजान भगत' कहानी प्रकाश में आयी और यह स्वतन्त्रता संघर्ष काल का महत्वपूर्ण वर्ष था जब साम्राज्यवाद अपने उभार के चरम पर था इसी वर्ष में 'साइमन आयोग' की स्थापना की गई थी जिसका उद्देश्य यह जानना था कि क्या भारत के लोग इस योग्य हैं कि उन्हें और अधिक संवैधानिक अधिकार दिये जायें और उनका रूप क्या हो? सारे भारत में इसकी व्यापक प्रतिक्रिया हुई कि जिस आयोग को भारत के भाग्य अथवा राजनीतिक भविष्य को सुनिश्चित करना है उसका एक भी सदस्य भारतीय नहीं है। इन्हीं कारणों के फलस्वरूप कांग्रेस के 1927 के वार्षिक अधिवेशन में जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव 'पूर्ण स्वराज्य' स्वीकृत हुआ। यह समय किसानों के राष्ट्रवादी जागरण का भी समय है जब किसान अपनी शक्ति और सत्ता को पहचानने लगे थे और अपने बदत्तर हालात को सुधारने की कोशिश भी शुरू कर दी थी। किसान आंदोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन का एक अटूट रिश्ता था। किसानों में अपनी परम्परा, प्रथा और अपने कानूनी अधिकारों के प्रति मोह जागा और इन लोगों ने सभाओं, सम्मेलनों, रैलियों आदि में यथाशक्ति भाग लिया।

'सुजान भगत' कहानी में सुजान का धर्म की ओर झुकना, गाँव में कुआँ खुदवाना, गया जाना और फिर वापस आकर भोज कराना तथा कर्म और वचन से सात्विक हो जाना आदि-आदि शायद इस काल के किसान, जिसका प्रतिनिधित्व सुजान कर रहा था, की परम्परा और धर्म तथा अपनी संस्कृति के प्रति मोह था जिसे सुजान के द्वारा न सिर्फ इच्छा की गई वरन् उसे जिया भी गया। दूसरी तरफ सुजान का अपने ही परिवार में तिरस्कार किया जाना तथा उसकी स्वतन्त्रता को छीना जाना सुजान के कानूनी अधिकारों का हनन था जिसका सुजान ने विरोध किया और अन्ततः उसे प्राप्त भी किया परन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि सुजान के विरोध प्रगटीकरण का स्वरूप क्या था और यही स्वरूप ही सुजान रूपी किसान के मूकता एवं गौरव का कारण बना। स्वतन्त्रता काल के किसान संघर्षों का मुख्य उद्देश्य कुछ अत्यंत पीड़ादायक पहलुओं का अंत करना था। वह भी लड़ाई सीधी न लड़कर सत्याग्रह और अवज्ञा के रूप में लड़ी गयी जिसका तरीका था गाँधीवादी। मुंशी प्रेमचन्द जी भी गाँधीवादी तरीके में विश्वास करते थे इसलिए 'सुजान' के विरोध का स्वरूप भी गाँधीवादी था। जब सुजान भगत से उसके बीबी एवं बच्चे विद्रोह करते है और यहाँ तक कि उसके हाथ से भीख देने के लिए ले जाये जा रहे अन्न की छबड़ी को भी छीन लेते हैं, (यह चरम विरोध बिन्दु था) परन्तु सुजान कोई शारीरिक प्रतिरोध नहीं करता है सिर्फ खिसिया कर रह जाता है और फिर सोचता है अर्थात् चिन्तन करता है अपनी

स्थिति एवं भावी योजना का। ध्यातव्य है कि इस क्षण सुजान अपने बेटे को डाँट सकता था अपनी पत्नी को डाँट सकता था और भिखारी को मनचाही भीख दे सकता था क्योंकि उस सम्पूर्ण धन धान्य का स्वामी 'सुजान' ही था परन्तु मुंशी प्रेमचन्द को शायद यह मंजूर नहीं था उन्हें तो अपने इस बात के माध्यम से गाँधीवादी विरोध को प्रदर्शित करना था और फिर सुजान कुछ निर्णय लेता है। यह अंश उसकी मनोदशा जानने हेतु प्रस्तुत है; ''संध्या हो गयी थी। भोला का भाई शंकर नारियल भर कर लाया। सुजान ने नारियल दीवार से टिकाकर रख दिया! धीरे-धीरे तम्बाकू जल गया। जरा देर में भोला ने द्वारा पर चारपायी डाल दी। सुजान पेड़ के नीचे से न उठा। सुजान बस अपनी पत्नी बुलाकी के ऊपर अपने मन की गुबार शब्दों के माध्यम से निकालता है और फिर वह बिना खाये पिये अर्थात् उपवास रखकर हाड़ तोड़ मेहनत करता है, चारा काटता है, हल जोतता है और फिर अपने परिश्रम से दुगुना अन्न उपजाता है। इस प्रकार से वह फिर से अपनी स्वतन्त्रता और अपने कानूनी अधिकार को प्राप्त करता है। इस पूरे उपक्रम में सुजान कहीं भी अपनी मर्यादा को खोता नहीं है न ही अतिशय बोलता है वरन् वह उपवास करके चुप रह करके अपने खोये हुए अधिकारों को प्राप्त करता है अर्थात् अपने गौरव की रक्षा करता है। यह है मुंशी प्रेमचन्द का यथार्थ जो आदर्श की ओर उन्मुख है। प्रेमचन्द आदर्शवादी थे कि यथार्थवादी या कि आदर्शोन्मुख यथार्थवादी यह सदैव से विमर्श का विषय रहा है। वस्तुतः यह दोनों धारणायें पश्चिमी हैं, दोनों जीवन दृष्टि या जीवन को जाँचने परखने का दर्शन है। मुंशी प्रेमचन्द का सम्पूर्ण दर्शन, जीवन या कहें कि जनजीवन पर केन्द्रित था अर्थात् यथार्थ पर केन्द्रित था परन्तु प्रेमचन्द जी इस यथार्थ में सकारात्मक सुधार या परिवर्तन की आकांक्षा रखते थे। इसी आकांक्षा के वशीभूत होकर ये अपने रचना संसार को दृष्टि प्रदान करते थे। साथ ही साथ प्रेमचन्द, गाँधी जी के जीवन एवं दर्शन से बहुत प्रभावित थे। अतः इस दर्शन का घोल अनचाहे ही वह अपने लेखन रस में मिलाते रहते थे। 'सुजान भगत' का सुजान इनकी इन्हीं आकांक्षाओं की सघनीभूत पूँजी है जिसका चरित्र न सिर्फ किसान जीवन की वास्तविक स्थिति का वर्णन करता है वरन् उसकी मूकता एवं उसका विरोध एक जमीनी आदर्श का निर्माण करता है जो किसी किसान का गौरव कहा जाता है और 'सुजान' पूरी कहानी में अपने चरित्र विस्तार के माध्यम से गौरव रक्षण के कार्य में प्रवृत्त रहता है।

15.7 सारांश

आपने 'सुजान भगत' कहानी का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। इस पाठ को पढ़ने के बाद आपके सामने कहानी के माध्यम से उठायी गयी विविध समस्याओं का एक सम्पूर्ण चित्र उभर कर आया होगा। मुंशी प्रेमचन्द के सम्पूर्ण रचनात्मक लेखन के केन्द्र में स्थित किसान एवं उसका परिवार तथा एक गाँव इस कहानी में अपने सम्पूर्ण विशेषताओं एवं विसंगतियों के साथ उभर कर सामने आया है। परिवार में प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता, अर्थ के क्षेत्र में उसके योगदान के सापेक्ष होती है तथा व्यक्ति के अधिकार अथवा सत्ता की प्राप्ति का आधार भी उसकी उपयोगिता ही है; यह इस कहानी के पात्रों उनके कार्य व्यापारों तथा विभिन्न स्थितियों एवं प्रसंगों से जाहिर होता है। 'सुजान भगत' वर्ष 1927 में प्रकाश में आयी इस समय भारत देश अंग्रेजों के हाथों गुलाम था उससे मालगुजारी के नाम पर या अन्य तरीकों से शोषित होना पड़ता था अर्थात् इस दौर के किसानों का स्वयं उनकी जमीन का उपभोग स्वतन्त्र रूप से कर पाने की स्वतन्त्रता नहीं थी।.... कदाचित् इस कहानी के माध्यम से प्रेमचन्द इस विडम्बना पूर्ण स्थिति का संकेत भी करना चाहते थे। 'सुजान भगत' का उसकी पत्नी एवं उसके बच्चों द्वारा तिरस्कार तथा घर के मुखिया का उसके घर में अधिकार हनन पत्नी का बच्चों के पक्ष में होना आदि स्थिति

पारिवारिक विडम्बनाओं का संकेत प्रस्तुत करती है। 'सुजान' जैसा बूढ़ा किसान पुरानी पीढ़ी का नेतृत्व करता है और वह अपने पूरे कार्य व्यापार में गाँधीवादी तरीके से जैसे, चिन्तन उपवास आदि के द्वारा अपने खोये हुए अधिकार एवं स्वतन्त्रता को प्राप्त करता है पत्नी तथा बेटों जैसी नई पीढ़ी को अपनी बूढ़ी हड्डियों के जोर से चुनौती देता है तथा विजय को प्राप्त करता है। आज के समाज के परिवार एवं ग्राम समाज की वास्तविकताओं का जो चित्र इस कहानी में मिलता है उससे इसकी सामायिकता भी सिद्ध होती है।

15.8 अभ्यास

1 सुजान का 'सुजान भगत' होना तथा उसका कहानी में सम्पूर्ण कार्य व्यापार किस दर्शन का परिणाम है ? प्रकाश डालिए।

2 पारिवारिक विडम्बनाओं की दृष्टि से 'सुजान भगत' कहानी पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

3 'सुजान भगत' का चरित्र चित्रण कीजिए।

4 'सुजान भगत में नई पीढ़ी का पुरानी पीढ़ी से द्वन्द्व चित्रित है व्याख्या कीजिए।

5 'सुजान भगत' आदर्शवादी मानवतावाद के प्रेरणा से प्रेरित है, प्रकाश डालिए।

6 'सुजान भगत' कहानी के शिल्प एवं भाषा पर एक टिप्पणी लिखिए।

7 ''मुंशी प्रेमचन्द के रचनात्मक लेखन का एक प्रमुख आधार किसान है''। ''सुजान भगत'' को केन्द्र में रखकर इस कथन की विवेचना कीजिए।

इकाई 16 'दो बैलों की कथा' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 कहानी का आशय

16.3 कहानी का शिल्प एवं भाषा

16.4 मनुष्यता की पहचान

16.5 स्वत्वरक्षा एवं नैतिकता बनाम 'दो बैलों की कथा'

16.6 समय और समाज

16.7 संघर्ष और मुक्ति की गाथा

16.8 सारांश

16.9 अभ्यास

16.0 उद्देश्य

'प्रेमचन्द की कहानियाँ' पाठ्यक्रम की 16वीं इकाई 'दो बैलों की कथा' आपके सामने प्रस्तुत है। यह कहानी न सिर्फ हमारे समय की कहानी है बल्कि सभ्यताओं की मंजिल-दर-मंजिल पार करते हुए सभ्य एवं सुसंस्कृत कहे जाने वाले न सिर्फ मनुष्य मात्र बल्कि उसके सम्पूर्ण समाज की कहानी है। रोचक एवं अद्भुत बात यह है कि यह कहानी सभ्य समाज एवं सभ्य मनुष्य की तो है परन्तु कही गयी है जानवर अर्थात् 'दो बैलों' के माध्यम से। यह पशुता के बरक्स मनुष्यता की कहानी है जो मनुष्यता के अनेकानेक मूल्यों को न सिर्फ पहचानने की बल्कि उसे पकड़ने की और उसे सहेजने एवं बचाने की प्रेरणा देती है। यह व्यापक सामाजिक संदर्भों की कथा है जिसमें अफ्रीका आदि देशों में भारतीयों की दुर्गति एवं अपमान का भाव बोध एवं कारण छुपा हुआ है। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम मानवीय संवेदना के विविध स्तरों को जान व समझ पाएंगे/पाएंगी और साथ-साथः

- आज जब हम विकास की अंधी दौड़ में मानवीय मूल्यों से दूर होते चले जा रहे हैं ऐसे समय में इस कहानी के माध्यम से जिसे लेखक ने पशु की सृजित वैचारिकी से प्रस्तुत की है, हम मानवीय संवेदना के विविध स्तरों को छू सकेंगे, जाँच सकेंगे, समझ सकेंगे और सीख सकेंगे/सकेंगी;
- कथा कहने के प्रेमचन्दी अंदाज से परिचित हो सकेंगे, जहाँ शास्त्रीयता नहीं सहजता है, बनावट नहीं खुलापन है सिर्फ प्रेम नहीं त्याग भी है, गप्प नहीं सच्चा संदेश है जहाँ सिर्फ 'तुम' और 'मैं' नहीं, हम सब हैं;
- इससे हम ऐतिहासिक सच को जान सकेंगे कि वर्षों तक भारतीयों का विदेशियों द्वारा शोषण क्यों होता रहा, इसके पीछे कमजोरी या अज्ञान नहीं बल्कि निरी सज्जनता का भोलापन था। 'गधे' अथवा 'बैल' का रेखांकन कदाचित् इसी उद्देश्य से था;

- मनुष्य स्वयं को पशु सुनना एक गाली समझता है जबकि स्वयं मानव का ऐतिहासिक विकास पशु से हुआ है परन्तु विकसित मानव हमेशा अपने को पशु से दूर समझता व करता चला आ रहा है परन्तु वह अपने इस मकसद में कितना कामयाब है यह कहानी मनुष्य की इस मंशा पर किया गया एक व्यंग्य है जिसे आप जान सकेंगे/सकेंगी।

16.1 प्रस्तावना

प्रेमचन्द हिन्दी-उर्दू कथा साहित्य के उस सर्वोच्च शिखर का नाम है जो निर्जन और कठोर तथा अन उपजाऊ न होकर विविधरंगी फूलों, सुस्वादु फलों तथा भाँति-भाँति के मानवों से लबालब भरा हुआ है। इनका सम्पूर्ण साहित्य मानव मुक्ति एवं संघर्ष के व्यापक चेतना का साहित्य है। इनके नायक अभिजन अथवा अलौकिक पुरुष आदि न होकर समाज के निचले तबके से होते हैं जो धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक विसंगतियों के शिकार होते हैं तथा ये अपनी स्थिति का संवेदी रूप वर्णित करते हैं साथ ही साथ ये अनेकानेक शोषित स्थितियों से मुक्ति की राह तलाश करते हुए नजर आते हैं। प्रेमचन्द की यह चेतना व्यक्ति, समुदाय, समाज और राष्ट्र, यहाँ तक कि सम्पूर्ण विश्व तक फैली हुई है।

मुंशी प्रेमचन्द ने अपने लेखन काल 1908 से 1937 के बीच 300 से अधिक हिन्दी-उर्दू कहानियों की रचना की जिनमें राष्ट्र भी है, व्यक्ति भी है, समाज है, सामाजिक सरोकार है, शोषक है, शोषित है, दलित है, दीन है, हिन्दू है, मुसलमान है, पशु है, पशुता है, मानव हैं, मानवीयता है परन्तु सबसे अहम हैं उनकी दलित चेतना और मानव मूल्य। 'दो बैलों की कथा' क्षरित होते मानव मूल्यों की सजग कहानी है वह भी जानवर की जुबानी। वैसे तो प्रेमचन्द की कलम दलितों की दशा पर विशेष रूप से चली है– 'ठाकुर का कुआँ', 'दूध का दाम', 'सद्‌गति', 'मंदिर', 'मंत्र', 'जुरमाना', तथा 'कफन' आदि दलित सन्दर्भों पर आधारित कथा हैं परन्तु 'दो बैलों की कथा' मानव के विचार और व्यवहार पर आधारित कथा है जिसमें मूल्य परकता है। यहाँ कोई वर्ग नहीं है मसलन शोषित और शोषक जैसा यहाँ मानव के व्यवहार में व्याप्त बुराइयों का सूक्ष्म अंकन हुआ है। जिस प्रकार पंचतन्त्र में पशु-पक्षियों की लोककथाओं में मनुष्यों के लिए नैतिक संदेश है इसी परम्परा का कुछ निर्वाह प्रेमचन्द जी ने भी किया है। इन्होंने अपनी कई कहानियों में पशुओं को स्थान दिया है। 'स्वत्वरक्षा' में एक अड़ियल घोड़े का स्वाभिमानी चरित्र है। 'अधिकार कहानी में 'धूर्त कुत्ता', अंग्रेजी राज की धूर्तता का प्रतीक है। 'पूस की रात' के कुत्ते का अलग रूप है वह स्वामिभक्त और उपयोगी है जो ठंड की रात में हल्कू को अपने बदन से गर्मी तक देता है परन्तु 'दो बैलों की कथा' के बैल, हीरा और मोती का आपसी प्रेम न सिर्फ कृषक वर्ग के एकता और समता को प्रदर्शित करता है बल्कि आमजन के अधोमुखी विचारों को हीरा-मोती अपनी वैचारिकी से गम्भीर चुनौती देते हैं। परस्पर प्रेम, सहयोग और संघर्ष की शिक्षा भी देते हैं साथ ही साथ मुक्ति का मार्ग भी दिखाते हैं वह भी सभी की मुक्ति पर बल देकर। झूरी के दोनों बैल जितना आपस में प्रेम रखते थे उतना ही वह झूरी अथवा अपने मालिक से भी प्रेम करते थे। मालिक से बिछुड़ने पर वह काम से नहीं बल्कि प्रेम वियोग से दुखी होते हैं जब दोनों दुबारा झूरी की ससुराल जाते हैं तो उन्हें बड़ी यातना दी जाती है, बालिका के प्रेम से वे प्रभावित होते हैं और उसके सहयोग से ऋणी भी। भागने की स्थिति में वे काजी हाउस में बन्द होते हैं यातना सहते हैं परन्तु ये एक धैर्यवान, संयमी, विवेकी पुरुष की तरह अपना सकारात्मक संघर्ष करते हैं और सभी की मुक्ति की बात करते है, नैतिकता की चर्चा करते हैं और यहीं वे कहानी को चरम उत्कर्ष प्रदान करते हैं। हाँलाकि आज का समाज प्रेमचन्द के युग का समाज नहीं रह गया है। प्रेमचन्दयुगीन समाज में प्रमुख वर्ण सामंत, किसान और महाजन थे। समाज के मूलभूत कार्य इन्हीं के द्वारा सम्पन्न होते थे। स्वभाव के महाजन अभी पूँजीपति नहीं बने थे। निम्नवर्ग अथवा

मध्यवर्ग का उदय हो चुका था परन्तु पूर्ण भूमिका के साथ नहीं। यों तो प्रेमचन्द के साहित्य में सभी सामाजिक वर्गों और समुदायों के प्रतिनिधि चरित्र मिलते हैं परन्तु प्रेमचन्द जी इस बात को अच्छी तरह से समझते थे कि साहित्य में उन्हीं वर्गों पर ध्यान विशेष रूप से देना चाहिए जिन पर समाज का आधारभूत जीवन टिका हुआ हो, मार्क्सवादी दृष्टि से इसी बात को इस तरह से कह सकते हैं– एक सचेत साहित्यकार की दृष्टि समाज की विसंगतियों एवं अन्तर्विरोधों तथा अन्यायपूर्ण स्थितियों पर होनी चाहिए। 'दो बैलों की कथा' कृषक जीवन की पृष्ठभूमि पर रची गयी है। इसमें समाज के निम्न वर्ग का चित्रण है, अन्यायपूर्ण स्थितियों का विशद् चित्रण है साथ ही साथ इसमें विसंगतियाँ भी वर्णनीय है। यह कहानी उपरोक्त बिन्दुओं पर विचार करने हेतु प्रस्तावित है।

16.2 कहानी का आशय

झूरी काछी के पास हीरा और मोती नाम के दो बैल थे। दोनों पछाई जाति के थे और देखने में अत्यन्त सुन्दर। दोनों बैलों में अत्यन्त लगाव व भाईचारा था। संयोगवश एकबार इन दोनों बैलों को झूरी अपने ससुराल भेज देता है। नये स्थान पर जाकर दोनों को अच्छा नहीं लगा और वे रस्सी तुड़ाकर अपने घर वापस भाग आये। झूरी तथा गाँव वाले इन्हें देखकर खुश होते हैं परन्तु झूरी की पत्नी इन्हें भला बुरा सुनाती है और दूसरे दिन फिर झूरी का साला आया और इन्हें लेकर अपने घर चला गया वहाँ ले जाकर इन्हें मोटी रस्सियों से बाँधा और इन्हें खाना कम दिया और काम अधिक से अधिक लिया गया घोर यातनायें दी गयी और फिर एक दिन बच्ची के सहयोग से रस्सी तुड़ाकर वहाँ से भाग जाते हैं और रास्ता भटक जाते हैं।

खूब पेट भर मटर चरने के बाद वे मौज में अपनी सींगें आपस में लड़ाते हैं और फिर बाद में वे काजी हाउस में बन्द कर दिये जाते हैं। हीरा और मोती का काजी हाउस में जाने का पहला अनुभव था। मोती का मन विद्रोह करता है परन्तु पहल हीरा करता है वह सींगो के प्रहार से काजी हाउस के दीवाल को गिरा देता है और सभी जानवारों को मुक्त कर देते हैं परन्तु हीरा रस्सी बँधा था इसलिए नहीं भाग पाता है और मोती उसे छोड़कर नहीं जाता है। दोनों पकड़े जाते हैं और इन्हें कसाई के हाथ में बेंच दिया जाता है और जब इन्हें लेकर कसाई चलता है तो रास्ता इन्हें अपने घर की तरफ का लगता है और फिर दोनों बैल रस्सी तुड़ाकर अपने घर की तरफ भागते हैं घर पहुँचकर दोनों अपने अपने थान पर खड़े हो जाते हैं। पीछे से कसाई आता है। झूरी और कसाई में थोड़ा प्रतिवाद होता है फिर हारकर कसाई चला जाता है।

16.3 कहानी का शिल्प एवं भाषा

प्रेमचन्द जी जब कथा मंच पर आये तब वे न सिर्फ अपनी कथा परम्परा से परिचित थे वरन् उर्दू, अफगानी तथा अरबी-फारसी किस्सों से भी वे परिचित थे। परन्तु प्रेमचन्द की कहानियाँ किसी रूप विशेष की अनुयायी न होकर स्वतंत्र भाव, विचार की हैं। प्रेमचन्द की कहानियों के रचना शिल्प की एक बुनियादी विशेषता है। ये किसी कोण से सामासजन्य न होकर नितान्त सहज और साधारण है यही सहजता और साधारणतः इनकी निजी विशेषता है। इन्हीं कारणों से इनकी कहानियों में तात्कालिकता मात्र न होकर स्थायी असरकारकता होती है। डॉ रामविलास शर्मा, कहानीकार के बजाय प्रेमचन्द के उपन्यासकार रूप को अधिक महत्व देते हैं। फिर भी उनकी कहानियों के रचना-शिल्प पर कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष देते हैं; प्रेमचन्द को कहानी के तमाम सारे शास्त्रीय नियमों से अलग एक ऐसे कहानीकार के रूप में देखते हैं जो शास्त्र की रूढ़ियों से अलग अपनी

संवेदना और संवेदनात्मक निष्ठाओं को कहानी रचना का आधार बनाते हैं। डॉ0 शर्मा जी ने माना है ''उपन्यासों की तरह कहानियों में भी प्रेमचन्द कोई नियम कायदे मानकर नहीं चले।''

इन्हीं कारणों से प्रेमचन्द की कहानियों की बनावट एक जैसी नहीं है जैसी विषयवस्तु वैसा अंदाज। 'सवा सेर गेहूँ', 'शंखनाद' जैसी कहानियों की शुरुआत प्रेमचन्द एकदम ग्राम कथा शैली अर्थात् ठेठ एवं वर्णनात्मक लहजे में करते हैं-जैसे 'किसी गाँव में एक शंकर नामक कुरमी किसान रहता था.........। 'बूढ़ी काकी' जैसी कहानी की शुरुआत एक दम मनोवैज्ञानिक ढंग से करते हैं ''बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है......। 'ईदगाह' की शुरुआत अलग ढंग से करते हैं, ईद की सूचना के साथ। 'दो बैलों की कथा' का प्रारम्भ प्रेमचन्द जी 'बूढ़ी काकी' की तरह एकदम रोचक अंदाज में करते हैं ''जानवरों में गधा सबसे ज्यादा बुद्धिहीन समझा जाता है.........। गायें सींग मारती हैं, ब्यायी हुई गाय तो अनायास ही सिंहनी का रूप धारण कर लेती है। कुत्ता भी बहुत गरीब जानवर है. ....। कहानी आगे बढ़ती है परन्तु अंदाज यही रहता है, ''लेकिन गधे का एक छोटा भाई और भी है, जो उससे कम गधा है और वह है 'बैल'। ''इस तरह से गधे, गाय, कुत्ते से होते हुए कहानी अपनी वर्णनात्मक शैली में कथ्य को विशद करती है कि 'झूरी काछी के दोनों बैलों के नाम थे हीरा और मोती। इसके बाद पूरी कहानी वर्णनात्मक शैली में आगे बढ़ती है और सन्दर्भों तथा स्थितियों के अनुसार सरल, सहज एवं दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक रूप ग्रहण करती है। सम्पूर्ण कहानी सहज गति से विस्तार प्राप्त करती है और अंत एकदम साधारण 'उसी समय मालकिन ने आकर दोनो के माथे चूम लिये।'

स्पष्ट रूप से देखें तो इस कहानी में कौतूहल न होकर सादगी है। कहानी के चित्र, स्थित और प्रसंग के बीच से उठकर संवेदनात्मक स्थिति को प्राप्त करते हैं। इसमें स्वाभाविक चरित्र विकास दिखता है घटनाक्रम स्वयं मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक सत्य का प्रकटीकरण करते हैं जैसे ''पड़ने दो, बैल का जन्म लिया है तो मार से कहाँ तक बचेंगे''? कहानी के सभी पात्रों का चरित्र उनके क्रियाकलापों से तथा संवादों से स्पष्ट होता है तथा समयानुसार की गई टिप्पणियाँ इन्हें और पुष्ट करती हैं। जैसे, ''उसे मार गिराते तो दुनिया क्या कहती? वह अपना धर्म छोड़ दें लेकिन हम अपना क्यों छोड़ दें ?..........। 'भागना कायरता है।'

अंत में कहानी की भाषा डॉ रामविलास शर्मा जी के अनुसार ''प्रेमचन्द को देश के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में अंग्रेजी भाषा की प्रभुता खलती थी। यह उनकी साम्राज्य विरोधी राष्ट्रीय चेतना उनके आत्म सम्मान की भावना का जबरदस्त सबूत था। किसी ने साम्राज्यवादियों को अंग्रेजी लादने की नीति के खिलाफ, बुद्धिजीवियों में इस नीति के सामने सिर झुकाने की नीति के खिलाफ इतने रोष और तक्र के साथ बगावत न की थी, जैसे प्रेमचन्द ने।'' जाहिर है कि ऐसे विचार को धारण करने वाला लेखक जब किसी रचना में प्रवृत्त होगा तो उनके कथ्य के साथ-साथ भाषा भी जनतांत्रिक होगी वह जन की बात जन की भाषा में कहेगी-। 'दो बैलों की कथा' की भाषा सरल, सुसंगत एवं भावव्यंजक है जो पूरी कहानी में कहीं भी कथ्य प्रेषण में बाधा न पहुँचाकर सहयोगी की भूमिका में रही जैसे एकाध उदाहरण 'ना दादा पीछे से तुम भी उन्ही की-सी कहोगे।' कथा की भाषा पारदर्शी है, कहीं भी कोई गाँठ या पेंच ऐसी नहीं है जिसे खोलने में पाठक को दिक्कत का सामना करना पड़े।

16.4 मनुष्यता की पहचान

मुंशी प्रेमचन्द एक सामाजिक चिन्तक थे। उनकी प्रत्येक रचना चाहे वह उपन्यास हो या

कहानी हो अथवा अन्य लेख आदि हों हर जगह सामाजिक और आर्थिक पक्ष उनके लेखन का केन्द्रीय तत्व रहा है। जाहिर सी बात है जो व्यक्ति समाज की चिन्ता से सराबोर हो वह उस समाज की इकाई व्यक्ति अथवा मानव की चिन्ता किये बिना कैसे रहेगा। 'दो बैलों की कथा' को अगर दो भागों में बाँट कर देखें तो इसमें एक तरफ मनुष्य है जैसे झूरी, उसकी पत्नी, झूरी के साले, उनकी पत्नियाँ, एक छोटी बच्ची, कसाई, काँजी हाउस का चौकीदार आदि दूसरी तरफ दो बैल हैं हीरा और मोती। अगर पूरी कहानी पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट होता है कि इस कहानी के मानवीय पात्रों (कुछ को छोड़कर) में कैसी पशुता है और जो प्रकृतितः पशु हैं उनमें कैसी मानवीयता। हीरा और मोती दोनों के पास बोलने के लिए जुबान नहीं है। दोनो, हीरा और मोती झूरी के बैल थे। दोनों में गजब का परस्पर प्रेम था, भाईचारा था, एकमतता थी जो स्वार्थी मानवों के लिए सदैव उदाहरण बनी रहेगी। जैसेः- ''दोनों एक दूसरे को चाटकर और सूँघकर अपना प्रेम प्रकट करते, कभी-कभी दोनों सींग मिला लिया करते थे– विग्रह के नाते से नहीं केवल विनोद के भाव से, आत्मीयता के भाव से, जैसे दोस्तों में घनिष्टता होते ही धौल-धप्पा होने लगता है। इसके बिना दोस्ती कुछ फुसफुसी, कुछ हल्की-सी रहती है, जिस पर ज्यादा विश्वास नहीं किया जा सकता। जिस वक्त ये दोनों बैल हल या गाड़ी में जोत दिये जाते और गरदन हिलाकर चलते उस वक्त हर एक की यह चेष्टा होती थी कि ज्यादा-से-ज्यादा बोझ मेरी ही गरदन पर रहे। हीरा और मोती का यह प्रेम और परस्पर सहयोग अद्भुत है। आज के विकसित समाज में जब मनुष्य मंगल ग्रह पर जीवन बसाने की योजना बना रहा है प्रश्न है कि क्या वह हीरा, मोती जैसी वैचारिकी रखता है जो पशु होते हुए भी मानव से बढ़कर व्यवहार प्रदर्शित करते हैं यहाँ तक कि दोनों एक दूसरे का बोझ अपने ऊपर ढोने की इच्छा रखते हैं तथा एक के न खाने पर दूसरा भी नहीं खाता है तथा दोनों एक दूसरे से अतिशय प्रेम रखते हैं और परस्पर सहयोग भी। मुंशी प्रेमचन्द शायद तत्कालीन समाज के गुलामों के बीच में प्रेम और सहयोग का संकेत भी हीरा और मोती के माध्यम से करते हैं यह है इस कहानी के प्रथम भाग की पशु संवेदना जो मानवीय संवेदना से बेहतर है। इसे हम पशु की मानवीयता की संज्ञा भी दे सकते हैं।

झूरी अपनी पत्नी के दबाव में इन दोनों बेजुबानों को अपनी ससुराल भेज देता है परन्तु दोनों सत्याग्रही की तरह अनशन कर अपने घर वापस आ जाते हैं झूरी की पत्नी के क्रोध के वशीभूत होकर झूरी पुनः इन्हें अपने ससुराल भेज देता है वहीं जबरन इनसे कार्य कराया जाता है। यहीं से मानवीय पशुता का जन्म होता। है ससुराल में दोनों दण्ड के भागीदार बनते हैं उन्हें मार-मार कर काम करवाया जाता है। झूरी के साले उन पर अत्याचार करते हैं इसी क्रम में 'मोती' भड़कता है और कहता है ''मुझे मारेगा तो मैं भी एक-दो को गिरा दूँगा।'' हीरा उसे समझाता है और कहता है ''नहीं, हमारी जाति का यह धर्म नहीं है।'' यहाँ समझने वाली बात यह है कि 'जाति के धर्म' क्या आशय है और कथाकार इसके माध्यम से क्या कहना चाहता है ? जाति का धर्म अर्थात जिसे बैल की प्रजाति वर्षों से धारण करती चली आयी है वह है सहनशीलता और कर्मठता। प्रश्न है कि क्या हम और हमारा समाज अपने धर्म का पालन कर रहा है जिसे सदियों से हमारे पूर्वज करते चले आये हैं, उत्तर ना में होगा। क्योंकि बाजार के दबाव से हम इतना दबते चले जा रहे हैं कि हममें न सहनशीलता रही, न सहिष्णुता रही, न अपनापन रहा, न ही परम्परा के प्रति लगाव रहा बल्कि हमारी संवदनायें मरती चली जा रही हैं। उसके अन्दर कुत्सित स्वार्थ की विकृति पनप रही है। हम अनेक निहित स्वार्थों के लिए लड़-झगड़ रहे हैं। एक अन्य स्थल पर 'हीरा' कहता है ''उसे मार गिराते तो दुनिया क्या कहती। वह अपना धर्म छोड़ दें, लेकिन हम अपना धर्म क्यों छोड़ें। यह है सच्ची सामाजिकता जिसे कथाकार पशु रूपी बैल 'हीरा' से कहलाता है जिसमें लेखक की चिन्ता साफ होती है कि पशुतापूर्ण व्यवहार सर्वथा त्याज्य है। मनुष्य की पशुता का कुछ उदाहरण देखें जब

पहली बार हीरा और मोती, झूरी के ससुराल से भागकर चले आते हैं तब झूरी की पत्नी इन्हें देखकर जल उठती है और कहती है ''कैसे नमक-हराम बैल हैं कि एक दिन वहाँ काम नहीं किया; भाग खड़े हुए। जब नमक हराम शब्द पर झूरी आपत्ति दर्ज करता है तब उसकी पत्नी और चिढ़ती है तथा इन्हें कामचोर कहकर धमकाती है कि ''अब देखूँ कहाँ से इन्हें खली और चोकर मिलता है! सूखे भूसे के सिवा कुछ नहीं दँगी, खाये चाहें मरें। 'यहाँ खायें चाहें मरें' में हम एक मनुष्य की पशुवत सोच को देख सकते हैं। अन्य पात्रों जैसे झूरी के साले, काजी हाउस के चौकीदार एवं कसाई आदि के व्यवहार में भी पशुवत प्रवृत्ति नजर आती है इस तरह इस पूरी कहानी में मुंशी प्रेमचन्द जी बड़ी ही कुशलता से पशु रूपी बैल के द्वारा मानव श्रेष्ठों को प्रेम, संवेदना, सहयोग तथा नीति एवं धर्म की शिक्षा देते हैं।

16.5 स्वत्वरक्षा एवं नैतिकता बनाम 'दो बैलों की कथा'

आज के दौर में जब मनुष्य के ऊपर बाजार के दबाव के कारण उसका 'निज' खंडित हो रहा है तथा इतना भारी पड़ रहा है कि नैतिकता जैसी धारणा आज के मनुष्य को किताबी सी लगने लगी हैं परन्तु बावजूद इसके हमेशा से मानव की यह स्वाभाविक चिन्ता रही है कि वह अपने 'निज' अर्थात् अपना अस्तित्व, अपनी सभ्यता, अपनी संस्कृति आदि जैसे तत्वों को कैसे अक्षुण्य रखे तथा अपने व्यवहारी जीवन में कैसे नैतिक बना रहें।

प्रेमचन्द की कहानी 'दो बैलों की कथा' उपरोक्त गम्भीर प्रश्नों का सहज उत्तर देती है अगर कहानी को देखें तो हीरा और मोती दो बैलों के चरित्र विस्तार से कहानी अपने निर्माण को प्राप्त करती हैं। दोनों बैल, जिसकी विशेषता कहानी के प्रारम्भ में ही लेखक देता है 'गधे का छोटा भाई' जो उससे कम गधा, और वह है बैल।..............कुछ लोग बैल को शायद बेवकूफों में सर्वश्रेष्ठ। ऐसे चरित्र के स्वामी बैल न सिर्फ अपने स्वामी के प्रति घोर प्रेम रखते हैं बल्कि आपस में एक दूसरे से अद्भुत प्रेम का परिचय देते हैं। स्वामी भक्ति बैल का प्राथमिक चरित्र है जो उसका निज है पूरी कहानी में हीरा और मोती अपने निज की रक्षा करते रहते हैं। दोनों को जब झूरी ससुराल भेज देता है तो दोनों फिर अपने स्वामी के पास वापस आ जाते हैं। जब झूरी का साला दुबारा इन्हें अपने घर ले जाता है तब इन्हें घोर यातना देता है दोनों बैलों का अपमान करता है हीरा और मोती दोनों का स्वाभिमान जागता है और दोनों नाद की तरफ आँख तक नहीं उठाते हैं तथा जब दूसरे दिन इन्हें खेत में ले जाता है तब ये दोनों मार खाने के बाद भी पैर तक नहीं उठाते हैं और अपने निज की रक्षा के लिए प्रतिवाद भी करते हैं। अन्यत्र अपने स्वधर्म के प्रति कथन करते हैं कि 'उसे मार गिराते तो दुनिया क्या कहती ? स्वधर्म पालन एवं निज की रक्षा के प्रति सजगता का इससे अच्छा उदाहरण और क्या होगा।

जहाँ तक नैतिकता का प्रश्न है तो इन दोनों बैलों में अजब किस्म की नैतिकता है, गुप्त शक्ति है जिसके बारे में लेखक स्वयं संकेत देता ''अवश्य ही उन दोनों में कोई ऐसी गुप्त शक्ति थी जिससे जीवों में श्रेष्ठता का दावा करने वाला मनुष्य वंचित है।'' इन दोनों बैलों का चरित्र बड़ा ही तार्क्रिक एवं नैतिक है जब प्रथम बार झूरी इन्हें ससुराल भेजता है तो दोनों बैलों के प्रति कहानीकार लिखता है कि ''अगर भगवान ने उन्हें वाणी दी होती, तो झूरी से पूछते-तुम हम गरीबों को क्यों निकाल रहे हो। हमने तो तुम्हारी सेवा में कोई कसर नहीं छोड़ रखी। अगर इतनी मेहनत से काम न चलता तो और मेहनत ले लेते। हमें तो तुम्हारी चाकरी में मर जाना कबूल था। हमने कभी दाने-चारे की शिकायत नहीं की। तुमने जो कुछ भी खिलाया, वह सिर झुकाकर खा लिया।'' और फिर दोनों प्रश्न करते हैं, ''फिर तुमने हमें इस जालिम के हाथ क्यों बेंच दिया ? सम्पूर्ण कहानी में दोनों

बैल अपने चरित्र निर्वाह में नैतिकता का परिचय देते रहते हैं, जब दुबारा झूरी का साला इन दोनों को लेकर अपने घर जाता है और यातना देता है काम लेता है, मोटी रस्सी से बाँधता है, मोती भागने के लिए उद्यत होता है परन्तु हीरा कहता है ''पड़ने दो, बैल का जन्म लिया है, तो मार से कहाँ तक बचेंगे ? अन्यत्र हीरा मोती को समझाता है जब वह कहता है कि ''मुझे मारेगा तो मैं भी एक दो को गिरा दूँगा।'' हीरा कहता है ''नहीं। हमारी जाति का यह धर्म नहीं है।'

दुबारा जाने पर हीरा और मोती दिन भर जोते जाते, डण्डे खाते, अड़ते और फिर शाम को बाँध दिये जाते और फिर वह छोटी बच्ची उन्हें दो रोटियाँ खिलाती थी। ''एक दिन मोती ने मूक भाषा में कहा-अब तो सहा नहीं जाता, हीरा।

'क्या कहना चाहते हो ?

'एकाध को सींगों पर उठाकर फेंक दूँगा।'

'लेकिन जानते हो वह प्यारी लड़की जो हमें रोटियाँ खिलाती है, उसी की लड़की है जो इस घर का मालिक है। वह बेचारी अनाथ हो जायेगी ?

'तो मालकिन को न फेंक दूँ। वही तो उस लड़की को मारती है।'

'लेकिन औरत जात पर सींग चलाना मना है, यह भूले जाते हो।' हीरा का यह कथन उसकी वैचारिकी के नैतिक पक्ष को उघाड़ता है। एक उदाहरण इनकी गुलामी के दूसरे रूप का जब ये काजी हाउस में बन्द थे। प्रकृति से जानवर बैल, हीरा, और मोती का उद्यम और उसकी सात्विकता एवं परमार्थ देखने लायक है काजी हाउस में बन्द होना इनका पहला अनुभव था। हीरा और मोती न सिर्फ अपने भागने के लिए बल्कि काजी हाउस में बन्द अन्य जानवरों को छुड़ाने के उद्देश्य से सींग से मार-मार कर काजी हाउस की दीवाल को गिराते हैं, दीवाल कच्ची थी उसे आधा गिरा कर सभी जानवरों को ये भगाते हैं परन्तु गधा, स्थितिप्रज्ञ की तरह शांत भाव से बीच में सिर झुकाये खड़ा रह जाता है तो दोनों सींग से मार कर उसे भगाते है अर्थात् उसे मुक्त करते हैं। जब हीरा और मोती के स्वयं के भागने की बारी आयी तो हीरा को रस्सी से बँधा देखकर मोती उसे अकेला छोड़कर जाने से मना कर देता है और स्वयं मुक्त होते हुए भी नहीं जाता है और फिर चौकीदार इन्हें देख लेता है पुनः कसकर बाँध देता है फिर इन्हें कसाई को बेंच दिया जाता है। हीरा और मोती का सभी जानवरों को काजी हाउस से मुक्त कराना तथा मोती का मुक्ति की दशा में मुक्त न होना इन बेजुबान जानवरों के व्यवहार की सात्विकता का अद्भुत नमूना है। दोनों बैल सुख में दुःख में भी अपने मूल चरित्र अथवा आदर्शों को बनाए रखते हैं जो आज के मानव के लिए प्रेमचन्द का सच्चा संदेश है।

16.6 समय और समाज

प्रगतिशील लेखक-सम्मेलन के पहले अधिवेशन में सभापति पद से भाषण देते हुए प्रेमचन्द ने साहित्यकार के लिए कहा था कि ''वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई है।'' यह प्रेमचन्द के निजी विचार थे और कमोवेश इसी विचार श्रृंखला से अनुप्रेरित एवं अनुदेशित होकर उन्होंने अपना सम्पूर्ण लेखन कर्म सम्पादित किया है अगर प्रेमचन्द के जीवन संसार को देखें तो जब उन्होंने लेखन प्रारम्भ किया तब देश-गुलामी की जंजीर से जकड़ा हुआ था संसार, प्रथम महायुद्ध के मुहाने पर खड़ा था और जब इनके जीवन का अंत हुआ तब भी देश गुलाम था और संसार दूसरे विश्वयुद्ध के मुहाने पर खड़ा था। इनके पूरे जीवन काल मे न सिर्फ भारत बल्कि सम्पूर्ण विश्व की मानव

सभ्यता एवं संस्कृति में बड़े परिवर्तन हुए। इनके दर्जन भर उपन्यास और 300 से अधिक कहानियाँ इन परिवर्तनों एवं स्थितियों की साक्षी हैं। 1880 में बनारस के लमही गाँव में प्रेमचन्द एक किसान के घर पैदा हुए; सात वर्ष की उम्र में माँ का देहान्त हो गया और 15 वर्ष की उम्र में इनकी शादी हो गयी और 16 वर्ष आयु में इनके पिता का देहान्त हो गया। इनका प्रारम्भिक जीवन औसत था, संघर्षमय था। 'सोजेवतन' इनका पहला कहानी संग्रह यहाँ से लेकर मृत्यु पर्यन्त, प्रेमचन्द देश तथा देश की जनता की स्थितियों पर अपनी लेखनी चलाते रहे।

'दो बैलों की कथा' अक्टूबर, 1931 में हंस में छपी। 1930 के अवज्ञा आन्दोलन के शुरू होते-होते प्रेमचन्द जी ने हंस का सम्पादन भी आरम्भ कर दिया था। अवज्ञा आन्दोलन से पूर्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अंग्रेजी हुकूमत का साथ दिया था और फिर उससे मोह भंग हुआ। इस सम्पूर्ण घटना क्रम से प्रेमचन्द भी अनभिज्ञ नहीं थे। इनकी संवेदनाओं का प्रकटीकरण विभिन्न कहानियों एवं उपन्यासों के माध्यम से हुआ। नारी-मात्र की पराधीनता के बाबत इन्होंने 'सेवासदन' लिखा। 'प्रेमाश्रम' के माध्यम से किसानों पर अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे अत्याचार को इन्होंने प्रकट किया। 'रंगभूमि' में जनता के सकारात्मक संघर्ष को प्रदर्शित किया। 'गोदान' में किसानों के महाजनी शोषण का अद्भुत चित्र प्रेमचन्द ने प्रदर्शित किया। 'गबन', 'कर्मभूमि', 'कायाकल्प' आदि उपन्यासों के माध्यम से प्रेमचन्द ने अपने समय के समाज को जाँच कर प्रस्तुत किया। 'बलिदान', 'सुजानभगत', 'सवा सेर गेहूँ', 'दो बैलों की कथा', सद्गति, 'दूध का दाम', 'कफन' आदि कहानियाँ भी प्रेमचन्द के समय और उनकी संवेदना की चरम प्रस्तुतियाँ हैं, जिनमें उन्होंने किसान और दलित जीवन की बड़ी मार्मिक प्रस्तुति की है।

विस्थापन और वह भी सायास दुःखद प्रक्रिया का वर्णन 'दो बैलों की कथा में मिलता है, हीरा और मोती के विस्थापन में। मुंशी प्रेमचन्द गाँधी जी के विचारों से प्रभावित थे और स्वयं गाँधी जी ने पराये देश में मिली अभूतपूर्व पीड़ा का देश झेला था। वह 24 वर्ष की अवस्था में दक्षिण अफ्रीका गये थे। जब गाँधी जी डरबन से प्रिटोरिया के लिए एकबार जा रहे थे तो उन्हें रास्ते में तरह-तरह से अपमानित किया गया था। यह घटना सर्वविदित है कि गाँधी जी ने एक गाड़ी में यात्रा करने के लिए प्रथम श्रेणी का टिकट खरीदा था। गोरों ने उन्हें प्रथम श्रेणी से हटाकर ड्राइवर के साथ बैठने को कहा। उन्हें जब ड्राइवर के पास भी बैठने लायक नहीं समझा गया तो पायदान पर बैठने के लिए कहा गया इस पर गाँधी जी ने विरोध किया तो उन्हें मारा-पीटा भी गया।

भारतीयों के प्रति गोरी जाति भेदभाव पूर्ण व्यवहार रखती थी, समय-समय पर भारतीयों को दूसरे देशों में भेजा जाता था। दक्षिण अफ्रीका में पहला जत्था 1860 में गया था जहाँ के गोरे गन्ने की खेती करने के लिए इकरारनामें के तहत इन्हें ले गये थे। भारतीयों को विदेशों में ले जाकर श्रम लिया जाता है वह भी इनकी मर्जी से नहीं बल्कि गोरे शासकों की मर्जी से। भारतीयों ने इस अत्याचार को अपनी नियति मान लिया था। कभी यदि दिल में विरोध की बात उठती भी थी तो इसे वे दबा देते थे क्योंकि उन्हें मालूम था कि विरोध का कोई अर्थ नहीं प्राप्त होगा। ऐसे अत्याचार का विरोध सर्वप्रथम गाँधी जी ने प्रारम्भ किया। मुंशी प्रेमचन्द का हीरा, मोती का अपनी ससुराल बिना मर्जी से भेजने की सृष्टि सायास थी ऐसा प्रतीत होता है कि वे इनके माध्यम से, इनकी पीड़ा के माध्यम से एक समस्या विशेष पर भी ध्यान आकर्षित करना चाहते थे यहाँ पर उन्होनें गाँधीवादी विरोध का भी हीरा, मोती के माध्यम से प्रदर्शन किया है। ऐसा करना शायद तत्कालीन समय और समाज की माँग थी।

16.7 संघर्ष और मुक्ति की गाथा

वर्ष 1931 में 'दो बैलों की कथा' कहानी प्रकाशित हुई। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के उत्थान और विकास की दृष्टि से यह समय गाँधी युग के नाम से जाना जाता है जिसका उद्‌देश्य अहिंसात्मक असहयोग के द्वारा पूर्ण स्वराज की प्राप्ति था। इस युग में महात्मा गाँधी प्रमुख नेता थे इन्होंने भारतीय राजनीति को एक नई विचारधारा दी। कदाचित प्रेमचन्द जी इस विचारधारा से प्रभावित थे और उन्होंने इस आधार को बल देने हेतु अनेक कहानियाँ सृजित की, 'दो बैलों की कथा' भी उनमें एक है। यह कहानी अगर ध्यान से देखें तो साम्राज्यवाद बनाम लोकतंत्र की वैचारिकी पर आधारित है। झूरी काछी के दो बैल हीरा, मोती कथा के संवाहक हैं जो प्रेमचन्द के विचारों पर आरूढ़ होकर कथा को विस्तार देते हैं। एक तरफ हीरा-मोती हैं दूसरी तरफ आदमियों की जमात है जिसमें झूरी उसकी पत्नी एवं साले तथा साले की पत्नियाँ काँजी हाउस का चौकीदार, कसाई एवं छोटी बच्ची आदि। झूरी दोनों बैलों का मालिक है और उन पर जान छिड़कता है बैल भी झूरी पर जाने देते हैं यहाँ लोकतन्त्र है, परन्तु झूरी अपनी पत्नी से दबता है और यह जानते हुए भी कि ससुराल में उसके बैलों की दुर्गति होगी वह बैलों को ससुराल भेज देता है यहाँ से प्रारम्भ होता है हीरा एवं मोती का संघर्ष परन्तु प्रथम चरण के संघर्ष में हीरा-मोती पगहा तुड़ाकर अपने घर आ जाते हैं परन्तु झूरी की पत्नी के साम्राज्यवादी मानसिकता के कोपभाजक बनकर फिर वे झूरी के ससुराल भेजे जाते हैं जहाँ पर इन पर घोर अत्याचार होता है मोटी रस्सी से बाँधें जाते हैं हाड़तोड़ मेहनत इनसे कराई जाती है खाना भी नहीं दिया जाता है यह है संघर्ष का चरम बिन्दु। दोनों बैल बच्ची की मदद से घर से भाग जाते हैं परन्तु रास्ता भूल कर वे कांजी हाउस तक जा पहुँचते हैं जहाँ वे एक नई गुलामी का शिकार होते हैं फिर एक कसाई को बेच दिये जाते हैं और इसके बाद ये मुक्ति की इच्छा से कसाई के चंगुल से भाग खड़े होते हैं और अंततः अपने मालिक झूरी के घर तक जा पहुँचते हैं।

यह कहानी दो विचारधाराओं का द्वन्द्व प्रस्तुत करती है साम्राज्यवाद एवं लोकतंत्र। झूरी, दोनों बैल, बच्ची, लोकतन्त्र के पोषक चरित्र का निर्वाह करते हैं वहीं पर झूरी की पत्नी उसके साले एवं साले की पत्नियाँ तथा कसाई साम्राज्यवादी मानसिकता के पोषाक के रूप में चित्रित हैं परन्तु सम्पूर्ण कहानी गाँधीवादी विचार से प्रभावित है हीरा और मोती असहयोग, अनशन, अपनाते हैं, अपने धर्म की दुहाई देते हैं इनमें स्वामिभक्ति है ये साम्राज्यवादी शक्ति से लड़ते हैं और अंततः अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। तदन्तर हम देखें तो यह कहानी 'निज' के स्वतन्त्रता की कहानी है हीरा और मोती कहीं न कहीं तत्कालीन समाज में व्याप्त शोषण एवं गुलामी के प्रतीक हैं उनके संघर्ष और फिर मुक्ति का प्रेमचन्दी औजार है। क्योंकि 1930-31 के समय में सम्पूर्ण भारत देश स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत था वह एक लम्बी दासता से मुक्ति चाहता था यह कहानी संघर्ष और मुक्ति इस विडम्बना पूर्ण स्थिति की ओर संकेत करती है।

16.8 सारांश

आपने 'दो बैलों की कथा' कहानी का ध्यान पूर्वक अध्ययन किया। इस पाठ के अध्ययन के बाद आपके मन में कहानी के चरित्रों द्वारा उठायी गयी समस्याओं के प्रति एक सम्पूर्ण चित्र उभर कर सामने आया होगा। प्रेमचन्द जी ने अपनी इस कहानी के माध्यम से तत्कालीन समय में भारतीय समाज जो कि गुलामी की जंजीर से जकड़ा हुआ था, के प्रति संघर्ष और यातना की परम्परा को उघाड़ा है। अन्याय, शोषण एवं साम्राज्यवादी

मानसिकता का चित्रण इस कहानी के माध्यम से होता है। हीरा और मोती दोनों बैल हैं, मूक हैं, स्वामिभक्त हैं अतः उनका शोषण किया जाता है ये दोनों झूरी के घर पर सुख पूर्वक रहते हैं और रहना चाहते हैं परन्तु इनकी मर्जी के विपरीत इन्हें झूरी के ससुराल भेज दिया जाता है अगर ये बोल पाते अथवा ये प्रतिरोध करने की स्थिति में होते हो शायद ये झूरी के घर से नहीं जाते। यहाँ पर इनकी असमर्थतता से तत्कालीन भारत के लोगों की असमर्थतता का बोध होता है क्योंकि 1931 में देश गुलाम था लोग अपनी स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ रहे थे। लोगों की बात को ब्रिटिश सरकार सुन नहीं रही थी इसके लिए लोग अनेक उद्योग कर रहे थे। कभी नरम रूख से तो कभी गरम रूख से। ठीक इसी तरह से हीरा और मोती की बात को कोई समझ नहीं पा रहा था झूरी जानकर भी विवश था क्योंकि वह अपनी पत्नी से दबा था।

एक बार जब दोनों बैल ससुराल से वापस आ जाते हैं तो दुबारा उन्हें फिर भेजा जाता है और वहाँ ले जाकर उन पर नये सिरे से अत्याचार किया जाता है इसी प्रकार से जब भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में देश के सेनानी अपनी स्वतन्त्रता के लिए कोई आन्दोलन शुरू करते थे तो अंग्रेज शासक उसे दूनी शक्ति से दबाते थे और फिर नये सिरे से नया कानून बना कर अपने शासन को जारी रखते थे। हीरा और मोती का सम्पूर्ण चरित्र एक धीर गम्भीर और नैतिक सेनानी का परिचय देता है जो गाँधीवादी विचारों से भी प्रेरित है और हर समय सुख में दुःख में नैतिक/अनैतिक, धर्म/अधर्म के प्रति सचेत रहता है तथा अनेक साम्राज्यवादी शक्तियों का जैसे झूरी की पत्नी उसके साले और सालों की पत्नियों का तथा काजी हाउस के चौकीदार तथा कसाई का डटकर मुकाबला करते हैं और अंत में अपने मकसद में कामयाब होते हैं।

16.9 अभ्यास

1. 'हीरा, मोती की लेखक निर्मित वैचारिकी पतनशील मानव समाज को गम्भीर चुनौती देती है।' इस कथन की विवेचना कीजिए।
2. 'दो बैलों की कथा','संघर्ष बनाम मुक्ति की कथा है।' टिप्पणी कीजिए।
3. हीरा तथा मोती ने अपने कार्य-व्यापार से 'स्वत्व रक्षा एवं नैतिकता' का उदाहरण प्रस्तुत किया है।' प्रकाश डालिए।
4. 'दो बैलों की कथा' के शिल्प एवं भाषा पर एक टिप्पणी प्रस्तुत कीजिए।
5. 'दो बैलों की कथा' के माध्यम से लेखक ने साम्राज्यवाद का सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत किया है।' व्याख्या कीजिए।
6. मुंशी प्रेमचन्द की शोषितों के प्रति पक्षधरता को 'दो बैलों की कथा' के माध्यम से सिद्ध कीजिए।
7. 'दो बैलों की कथा' कहानी के आधार पर प्रेमचन्द के विचार दर्शन को स्पष्ट कीजिए।

इकाई 17 "सवा सेर गेहूँ" : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 कहानी का आशय

17.3 औपनिवेशिक शासन और किसान

17.4 धार्मिक पाखंड और प्रेमचन्द

17.5 प्रेमचन्द की व्यंग्य दृष्टि

17.6 कहानी का शिल्प

17.7 कहानी की भाषा

17.8 सारांश

17.9 अभ्यास

17.0 उद्देश्य

'प्रेमचन्द की कहानियाँ' पाठ्यक्रम की 17वीं इकाई आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस इकाई में आप प्रेमचन्द की कहानी 'सवा सेर गेहूँ का अध्ययन करेंगे/करेंगी। प्रेमचन्द की यह कहानी सर्वप्रथम 1924 ई. में चाँद पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। जैसा कि आप जानते/जानती ही हैं कि यह वह समय था जब हम औपनिवेशिक शासन के अधीन थे और उसके शासन काल में भारतीय जनमानस का जीना दूभर हो गया था। वह तरह तरह के शोषण का शिकार था और उसपर अंकुश लगानेवाला भी कोई नहीं था। अंग्रेज सरकार को केवल अपने लगान से मतलब था जिसे वह जमींदारों से प्राप्त कर ही लेती थी बाकी जनता के दुख दर्द से उसका कोई सरोकार नहीं था। इस इकाई में हम 'सवा सेर गेहूँ कहानी के माध्यम से सबसे पहले औपनिवेशिक शासन में किसानों की इसी दुरावस्था पर विचार करेंगे और इस बात का दीदार करेंगे कि वे इस काल में किस तरह से जीने को अभिशप्त थे। इस इकाई में हम देखेंगे कि औपनिवेशिक शासनकाल में धर्म के नाम पर किस तरह से अशिक्षित और रूढ़िग्रस्त गरीब किसानों का शोषण धूर्त ब्राह्मणों और पुरोहितों द्वारा किया जाता था और कैसे ब्रिटिश हुकूमत उसे नजरअंदाज कर उन्हें एक प्रकार का मौन समर्थन भी देती थी। यह प्रेमचन्द के समय का यथार्थ था जिसे कहानीकार ने बखूबी अपनी इस कहानी में प्रस्तुत किया है। इस इकाई में आप प्रेमचन्द की कहानी प्रस्तुतिकरण की कला से तो परिचित होंगे/होंगी, साथ ही कथा सम्राट की उस व्यंग्य दृष्टि का भी दीदार करेंगे जिससे कहानी में जान आ गई है। इस इकाई में आप यह भी देखेंगे/देखेंगी कि प्रेमचन्द कथा कहने में कितने माहिर हैं और कैसे वे कहानी के वातावरण के अनुरूप एक नये शिल्प का निर्माण कर लेते हैं। इस इकाई में आप प्रेमचन्द की उस भाषा का भी परिचय प्राप्त करेंगे/करेंगी जिसके माध्यम से प्रेमचन्द अपनी बात पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में सफल होते हैं। अन्त में कहानी का सारांश और फिर कुछ अभ्यासों के मार्फत आप निश्चित ही कहानी को समझ कर उससे सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर दे पायेंगे/पायेंगी।

17.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप प्रेमचन्द की कहानी 'सवा सेर गेहूँ' का अध्ययन करने जा रहे हैं। यह कहानी 1924 ई. में लिखी गई थी और यह वही समय था जब हम अपनी आजादी के लिए संघर्षशील थे। प्रेमचन्द इस बात को अच्छी तरह से जान चुके थे कि देश का प्रत्येक वर्ग जब तक एक साथ मिलकर इस आजादी की लड़ाई में शिरकत नहीं करेगा तब तक औपनिवेशिक शासन से छुटकारा पाना मुश्किल था। ब्रितानिया सरकार अपनी 'फूट डालो और शासन करो' की नीति के तहत भारत के प्रत्येक वर्ग को आपस में लड़वा रही थी ताकि वह उनकी ओर से निश्चिंत रहकर देश का शोषण कर सके। अपनी इस कूटनीति में उसनें अपनी जमींदारी व्यवस्था के तहत महाजनों, पुरोहितों, ब्राह्मणों आदि को गरीब किसानों का खुला शोषण करने की छूट दे रखी थी। हमारा समाज और उसमें भी विशेषकर ग्रामीण समाज अपने रूढ़िग्रस्त जर्जर मान्यताओं में इस तरह जकड़ा था कि वह बड़ी आसानी से धूर्त पंडितों का शिकार बन जाता था। इस कहानी में प्रेमचन्द ने भारतीय किसान की उसी दुरावस्था का चित्रण किया है जिसमें मजबूरन उन्हें किसान से मजदूर और फिर अन्त में गुलाम बन जाने तक के लिए मजबूर किया जाता था। धूर्त ब्राहमण उन्हें धर्म की दुहाई देकर और ईश्वर का भय दिखाकर उनका भीषण शोषण करता है और उनके खून का एक एक कतरा तक चूस लेता है। इस कहानी में आप देखेंगे कि ब्रह्मणों की इस वृत्ति के प्रति प्रेमचन्द न केवल अपनी नाराजगी व्यक्त करते हैं बल्कि उसे इस प्रकार चित्रित करते हैं मानो वह कोई मनुष्य न होकर कोई आदमखोर राक्षस हो। इस कहानी में आप देखेंगे कि ईश्वर, धर्म और उसके ठेकेदार ब्राह्मणों पर प्रेमचन्द का वार कितना निर्मम होता है। इस कहानी में उन्होंने न केवल ब्राह्मणों की एक घिनौनी साजिश का पर्दाफाश किया है बल्कि पूरी औपनिवेशिक व्यवस्था को बेपर्दा कर दिया है। औपनिवेशिक शासन की देख-रेख में धार्मिक पाखंड और साम्प्रदायिकता खूब फल-फूल रही थी। प्रेमचन्द इन दोनों प्रवृत्तियों और इन्हें हवा देनेवाले लोगों के सामने चट्टान बनकर खड़े थे। प्रेमचन्द ने अपनी लेखनी के मार्फत कई बार इन दोनों परिघटनाओं और प्रवृत्तियों पर निर्ममता पूर्वक प्रहार किया है। पवित्रता और शुचिता की चादर के पीछे कितनी सड़ांध है इसका रहस्योदघाटन करते हुए अपने एक लेख 'अंधविश्वास' में वे कहते हैं ''हिंदू समाज में पूजने के लिए एक लंगोटी बाँध लेने और देह में राख मल लेने की जरूरत है। अगर गाँजा और चरस उड़ाने का अभ्यास हो जाए तो और भी उत्तम। यह स्वांग भर लेने के बाद फिर बाबाजी देवता बन जाते हैं। मूर्ख हैं, धूर्त हैं, नीच हैं, पर इससे कोई प्रयोजन नहीं। बाबा ने संसार को त्याग दिया, माया पर लात मार दी और क्या चाहिए। अब वह ज्ञान के भंडार हैं। पहुंचे हुए फकीर। हम उनें पागलपन की बातों में मनमानी बारीकियाँ ढूँढते हैं। उनको सिद्धियों का आगार समझते हैं। फिर क्या, बाबाजी के पास मुराद माँगने वालों की भीड़ जमा होने लगती है। सेठ, साहुकारों, अमले और बड़े बड़े घरों की देवियाँ उनके दर्शन को आने लगती हैं। कोई यह नहीं सोंचता कि एक मूर्ख दुराचारी लम्पट आदमी क्यों लंगोटी लगाने से सिद्ध हो सकता है। सिद्धि क्या इतनी आसान चीज है। हममें मस्तिष्क से काम लेने की शक्ति ही नहीं रही। दिमाग को तकलीफ नहीं देना चाहते। भेड़ों की तरह एक दूसरे के पीछे दौड़े चले जाते हैं, कुएँ में गिरे या खंदक में इसका गम नहीं। जिस समाज में विचार मंदता का ऐसा प्रकोप हो, उसको संभलने में बहुत दिन लगेंगे।'' प्रेमचन्द के ये विचार उनकी कई कहानियों में भी अपने वैविध्य के साथ मुखरित हुए हैं। 'सवा सेर गेहूँ' उनमें से एक है। आप इस बात को देखेंगे कि प्रेमचन्द अपने इस विचार को थोड़ी भिन्नता के साथ अपनी इस कहानी में कैसे प्रस्तुत करते हैं। प्रेमचन्द एक सजग प्रहरी की तरह उस हर चीज

पर प्रहार करते हैं जो समाज के विकास में बाधा उत्पन्न करती है। यह प्रेमचन्द की अपनी विशेषता है जिसका दीदार इस कहानी में आप बखूबी करने जा रहे हैं।

17.2 कहानी का आशय

सवा सेर गेहूँ कहानी के माध्यम से प्रेमचन्द ने अशिक्षा और परम्परागत रूढ़िगत संस्कारों से ग्रस्त भारतीय ग्रामीण समाज की ऐसी तस्वीर प्रस्तुत की है जिसमें बेचैनी है, दर्द है, घुटन है। धर्म के नाम पर अपना पेट भरनेवाले साधु और महात्मा किस तरह किसानों की धर्मभीरुता का फायदा उठाकर उनका ताउम्र शोषण करते रहते हैं इसका सजीव चित्रण इस कहानी के माध्यम से सामने आया है। किस तरह धर्म के भय से गरीब ग्रामीण स्वयं भूखे रखकर भी अपने द्वार पर आए ब्राह्मण को हलवा पूरी का भोग कराते हैं और कभी कभी इनके माया जाल में फसकर न केवल अपने को बल्कि अपने आने वाली नस्ल को भी पूरी तरह से बर्बाद कर देते हैं इसका सजीव चित्रण इस कहानी में मिलता है। इस कहानी के केंद्र में शंकर नामक एक गरीब किसान है जो अपने घर में अनाज का एक दाना न होते हुए भी अपने द्वार पर आए हुए एक महात्मा महोदय के भोजन की व्यवस्था करता है। प्रेमचन्द इसका चित्रण बड़े मनोरंजक और विडंबना के रूप में करते हैं। शंकर को साधु महाराज के भोजन का सामान भी एक विप्र के यहाँ ही मिलता है। शंकर एक विप्र महाराज के यहाँ से सवा सेर गेहूँ कर्ज लेकर आता है। उसकी पत्नी उसे पीसती है तब जाकर महात्मा जी का भोग लगता है। महात्मा जी तो सुबह आशीर्वाद देकर चले जाते हैं पर इसके बाद शंकर पर जो बीतता है वह हमें कुछ सोचने को मजबूर कर देता है। शंकर की स्थिति का चित्रण करते हुए कथाकार कहता है ''विप्र महाराज साल में दो बार खलिहानी लिया करते थे। शंकर ने दिल में कहा, सवा सेर गेहूँ इन्हें क्या लौटाउँ, पंसेरी के बदले कुछ ज्यादा खलिहानी दे दूँ, यह भी समझ जाएँगे, मैं भी समझ जाउँगा। चैत में जब विप्र जी पहुँचे तो उन्हें डेढ़ पसेरी के लगभग गेहूँ दे दिया और अपने को ऋणमुक्त समझकर उसकी कोई चर्चा न की। विप्र जी ने फिर माँगा। सरल शंकर को क्या मालूम था कि यह सवा सेर गेहूँ चुकाने के लिए मुझे दूसरा जन्म लेना पड़ेगा।'' शंकर समझता है वह उऋण हो गया पर ब्राह्मण अपने शिकंजे में आए शिकार को भला इतनी आसानी से कैसे छोड़ देता। ब्राह्मण देवता सात साल बाद शंकर से तकाजा करते हैं और सवा सेर गेहूँ को साढ़े पाँच मन बना देते हैं। जब शंकर ऐतराज करता है और कई बार गेहूँ देने की बात करता है तो ब्राह्मण सीधे मुकर जाता है। उसे वह बख्शीश के खाते में डाल देता है। प्रेमचन्द इस स्थिति का चित्रण इस रूप में करते हैं ''विप्र.लेखा जौ जौ, बखशीश सौ सौ। तुमने जो कुछ दिया होगा, उसका कोई हिसाब नहीं, चाहे एक की जगह चार पसेरी दे दो। तुम्हारे नाम बही खाते में साढ़े पाँच मन गेहूँ लिखा हुआ है, जिससे चाहे हिसाब लगवा लो। दे दो तो तुम्हारा नाम काट दूँ, नहीं तों और भी बढ़ता रहेगा।''जब शंकर धूर्त ब्राह्मण के इस कृत्य को अन्याय कहकर इसका विरोध करता है तो वह अपना ब्रह्मास्त्र चलाता है ''यहाँ न दोगे भगवान के घर दोगे।'' शंकर काँप उठता है। उसे लगता है कि ''एक तो ऋण वह भी ब्राह्मण का बही में नाम रह गया तो सीधे नरक में जाउँगा।'' पूर्वजों का बनाया हथकंडा काम आ जाता है।

विप्र महाराज द्वारा साढ़े पाँच मन गेहूँ को साठ रुपये में तब्दील कर शंकर से उसकी भरपाई करने को कहा जाता है। प्रेमचन्द के शब्दों में ''हिसाब लगाया तो गेहूँ का दाम 60 रु. हुए। 60 रु. का दस्तावेज लिखा गया। 3 रु. सैकड़ा सूद। साल भर में न देने पर सूद का दर साढ़े तीन रु. सैकड़े, बारह आने का स्टाम्प, एक रु. दस्तावेज की तहरीर शंकर को उपर से देनी पड़ी।'' शंकर भी कम हठी न था। उस पर भी ऋण चुकाने का धुन सवार हो जाता है। वह दिन रात कड़ी मेंहनत कर किसी तरह साठ रुपये जमा कर

लेता है और उस रुपये को लेकर विप्र महाराज के पास जाता है। विप्र को अपना शिकार छूटता नजर आता है। पर जब उसे पता चलता है कि उसमें अभी पंद्रह रुपये कम हैं तो वह शंकर को उऋण करने से मना कर देता है। शंकर दो तीन महीनों की मोहलत माँगता है पर विप्र साफ इंकार कर देता है। शंकर गाँव वालों से पंद्रह रुपया उधार माँगने निकल पड़ता है पर पंडित जी के भय से कोई भी उसे उधार नहीं देता है। शंकर यहाँ पराजित सा महसूस करने लगता है और उसमें एक पस्ती सी आने लगती है। कहानीकार इस स्थिति का चित्रण करते हुए कहता है ''क्रिया के पश्चात् प्रतिक्रिया नैसर्गिक नियम है। शंकर साल भर तक तपस्या करने पर भी जब ऋण से मुक्त होने में सफल न हो सका, तो उसका संयम निराशा के रूप में परिणत हो गया। उसने समझ लिया कि जब इतना कष्ट सहने पर भी साल भर में 60 रु से अधिक न जमा कर सका, तो अब कौन सा उपाय है, जिसके द्वारा इससे दूने रुपये जमा हों। जब सिर पर ऋण का बोझ ही लादना है, क्या मन भर का और क्या सवा मन का उसका उत्साह क्षीण हो गया, मेहनत से घृणा हो गई। ''इसके बाद से शंकर मेहनत से कोसों दूर भागने लगता है। गांजा और चरस के चिलम एक बार फिर से उसके साथी बन जाते हैं। अब वह पैसे बचाना छोड़ देता है और कुछ पैसे पाते ही कपड़े बनवाता है। उसे लगता है क्या बिगाड़ लेंगे पंडित जी। अब उसके पास तो कुछ है ही नहीं। पर पंडित तो महा धूर्त है। वह पहले शंकर को और फिर उसके पूरे परिवार को उस सवा सेर गेहूँ के बदले अपना बंधुआ मजदूर बना लेता है। प्रेमचन्द कहानी के अंत में कहते हैं ''यह सत्य घटना है। ऐसे शंकरों और विप्रों से दुनिया खाली नहीं है।'' कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि इस कहानी में प्रेमचंद ने न केवल ब्राह्मणों की साजिश का पर्दाफाश ही किया है बल्कि पूरी औपनिवेशिक व्यवस्था की पोल पट्टी भी खोल कर रख दी है।

17.3 औपनिवेशिक शासन और किसान

औपनिवेशिक शासन के हर कमजोर पहलू पर प्रहार करना प्रेमचन्द अपना लक्ष्य मानते थे और उसे विषय बनाकर कहानियों की रचना करते थे। औपनिवेशिक शासन ने पूरे समाज को विकृत कर रखा था और उसकी निगरानी में कुछ स्वार्थी लोगों ने हर तरफ लूट खसोट मचा रखी थी। औपनिवेशिक गुलामी से जुड़ा एक सत्य जमींदारों, महाजनों और ब्राह्मणों द्वारा किसानों और किसान मजदूरों का आर्थिक पुरोहिती शोषण था। प्रेमचन्द इसका मुख्य कारण ग्रामीणों की अशिक्षा और उनके रूढ़िगत संस्कार को ही मानते थे जिसे उसी रूप में बनाए रखने में औपनिवेशिक शासन का ही हित सधता था। देश की अधिकांश जनता 'संवैधानिक अधिकार' की बात नहीं समझती थी। उसके लिए अंग्रेजों का शासन कोई समस्या नहीं थी। वह अपने देश के ही जमींदार, महाजन और पुरोहित , जिनके तिहरे शोषण चक्र में वह पिस रहा था, को ही अपना सबसे बड़ा दुश्मन मानता था और औपनिवेशिक शासन व्यवस्था मौन रहकर लगातार इस स्थिति का लाभ उठा रही थी। प्रेमचन्द इस वास्तविकता को समझते थे, अतः उन्होंने इस यथार्थ को बेनकाब करने के लिए 'सवा सेर गेहूँ' जैसी कई कहानियाँ लिखीं। इस कहानी के केंद्र में शंकर नामक एक किसान है जो निरक्षर है और एक ब्राह्मण द्वारा शोषित है। अपने द्वार पर आए एक ब्राह्मण को भोजन कराने के लिए अपने गाँव के ही एक दूसरे ब्राह्मण से सवा सेर गेहूँ उधार लेता है। अपने जानते वह उसे चुका भी देता है पर विप्र महाराज इसे स्वीकार नहीं करते और शंकर को भगवान के घर उसे चुकता कहने की बात कहकर भयभीत करते हैं। प्रेमचन्द इस स्थिति का चित्रण करते हुए कहते हैं ''शंकर काँप उठा। हम पढ़े लिखे आदमी होते तो कह देते, अच्छी बात है, ईश्वर के घर ही देंगेः वहाँ की तौल यहाँ से कुछ बड़ी न होगी। कम से कम इसका कोई भी प्रमाण हमारे पास नहीं, फिर उसकी क्या चिंता। किन्तु शंकर इतना ताक्रिक, इतना व्यवहार चतुर न था। एक तो

ऋण वह भी ब्राह्मण का बही में नाम रह गया तो सीधे नरक में जाउँगा, इस ख्याल से ही उसे रोमांच हो गया। बोला महाराज, तुम्हारा जितना होगा यहीं दूँगा, ईश्वर के यहाँ क्यों दूँ इस जनम में तो ठोकर खा ही रहा हुँ, उस जनम के लिए क्यों काँटे बोउँमगर यह कोई हिसाब नहीं। तुमने राई का पर्वत बना दिया है, ब्राह्मण हो के तुम्हे ऐसा नहीं करना चाहिए था। उसी घड़ी तकादा कर के ले लिया होता, तो आज मेरे सिर पर इतना बोझ क्यों पड़ता मैं तो दूँगा, लेकिन तुम्हें भगवान के यहाँ जवाब देना होगा।'' शंकर उसी के हथियार से उसे परास्त करने का प्रयास करता है पर धूर्त ब्राह्मण उसपर पलटवार करते हुए कहता है ''वहाँ का डर तुम्हे होगा, मुझे क्यों होने लगा। वहाँ तो सब अपने ही भाव बंधु हैं। ऋशि मुनि, सब तो ब्राह्मण ही हैं; देवता ब्राह्मण हैं, जो कुछ बने बिगड़ेगा सम्भाल लेंगे।'' शंकर इस अजीबोगरीब तक्र से परास्त होकर एक बार फिर से कर्ज चुकाने के असफल प्रयास में लग जाता है।

प्रेमचन्द औपनिवेशिक शासन काल में धर्म के नाम पर पेट भरने वाले साधुओं की पोल खोलने में कोई संकोच नहीं करते। इन परजीवी साधुओं का बोझ समाज पर पड़ता है और इनका उदर उत्तरोत्तर गरीब किसानों के एवज बढ़ता ही जाता है। प्रेमचन्द कहते हैं ''सात साल गुजर गये। विप्र जी विप्र से महाजन हुए, शंकर किसान से मजदूर हो गया। उसका छोटा भाई मंगल उससे अलग हो गया था। एक साथ रहकर दोनों किसान थे, अलग होकर मजूर हो गये।'' उपनिवेशवादी महाजनी सभ्यता का यह सीधा असर था। महाजनी सभ्यता किस प्रकार किसानों को निगल जाती है इसका बड़ा ही बेबाक चित्रण प्रेमचन्द ने इस कहानी में किया है। गरीब किसान शंकर 'महात्मा जी' को भोजन कराने के लिए सवा सेर गेहूँ उधार लेता है।'महात्मा जी' तो प्रातःकाल आशीर्वाद देकर चलते बनते हैं, इधर गेहूँ उधार देने वाले 'विप्र महाराज' शंकर को ऐसे महाजनी चक्कर में डालते है कि उसे अपनी सारी जिन्दगी उनकी गुलामी करनी पड़ती है और उसके मरने के बाद उसका बेटा भी कर्ज चुकाने के लिए विप्र महाराज की गुलामी करने को बाध्य होता है। प्रेमचन्द के शब्दों में ''इस निर्णय की कहीं अपील न थी। मजदूर की जमानत कौन करता कहीं शरण न थी, भागकर कहाँ जाता? दूसरे दिन से उसने विप्र जी के यहाँ काम करना शुरू कर दिया।'' प्रेमचन्द ने यहाँ स्पष्ट कर दिया है कि औपनिवेशिक शासन काल में गरीब आदमी की सुनवाई करनेवाला तो कोई नहीं ही था, औपनिवेशिक शासन की उदासीनता ने उस आग में और भी घी डालने का काम कर दिया था। इस शासन व्यवस्था ने जमींदारों और धर्म के ठेकेदारों को आम आदमी का खून चूसने की खुल्लम छूट दे रखी थी और वह अपनी इस नीति के तहत बिना किसी रोक टोक के धड़ल्ले से इस काम को बखौफ अंजाम दे रहा था। प्रेमचन्द ने अपनी इस कहानी में औपनिवेशिक शासन व्यवस्था की इस कमीनगी का अत्यंत तल्ख चित्रण किया है।

17.4 धार्मिक पाखंड और प्रेमचन्द

प्रेमचन्द धर्म के नाम पर गरीब जनता का शोषण करनेवाले धर्म के ठेकेदारों के सख्त विरोधी हैं। इन्होंने 'मुक्ति मार्ग', 'बाबा जी का भोग', 'मोटेराम शास्त्री', 'मोटेराम शास्त्री का नैराश्य' आदि कई कहानियों में थोड़े बहुत अंतर के साथ पुरोहिती शोषण का अत्यंत तल्ख चित्रण किया है।'सवा सेर गेहूँ' उनमें से ही एक है। यह कहानी प्रेमचन्द की इस तरह की अन्य कहानियों से इस रूप में विशिष्ट है कि इसमें शोषण कर्ता के रूप में एक ऐसे विप्र महोदय को चित्रित किया गया है जो ब्राह्मण होने के साथ साथ महाजन भी है। यानी करैला नीम चढ़ा है। हिन्दू समाज की जर्जर हो चुकी रूढ़िग्रस्त मान्यता के तहत अशिक्षित ग्रामीणों के बीच यह धारणा घर कर गई थी कि ब्राह्मण से लिया हुआ कर्ज वापस न करने पर कर्जदार को उसका मूल्य ईश्वर के घर चुकाना पड़ता है। पुराने

स्मृति पुराण साहित्य द्वारा प्रचारित ये मूल्य बीसवीं शताब्दी तक आते आते कितने विकृत और मानव विरोधी हो गये थे इसका एहसास 'सवा सेर गेहूँ' कराती है। इस कहानी में एक गरीब किसान का शोषण जिस रूप में विप्र महाराज द्वारा किया जाता है वह हमें बहुत कुछ सोचने पर मजबूर कर देता है। किसान संस्कृति के तहत् द्वार पर कोई महात्मा आ जाए तो उसका सेवा सत्कार करना किसान का धर्म समझा जाता था। अगर घर में पंडित जी को भोजन कराने के लिए उसके पास अन्न न हो तो वह उसे साहूकार 'विप्र महाराज' से उधार सामग्री लेनी पड़ती थी जो अकसर उसकी विपत्ति का कारण बन जाता था। 'सवा सेर गेहूँ' में भी यही सब होता है। अपने द्वार पर आए एक महात्मा जी को भोजन कराने के लिए गरीब किसान शंकर अपने ही गाँव के एक विप्र महाराज से सवा सेर गेहूँ उधार लेता है। पर यह उधारी उसके लिए जी का जंजाल बन जाती है।वह धूर्त ब्राहमण सीधे साधे शंकर को ऐसे जाल में फँसाता है कि वह चाहकर भी उससे बाहर नहीं निकल पाता है और काल चक्र में पड़कर पुरोहित से महाजन बने 'विप्र महाराज' का जिन्दगी भर के लिए 'बधुँआ मजदूर' बन जाता है। इतना ही नहीं उसके बेटे को भी यह गुलामी विरासत में प्राप्त होती है। प्रेमचन्द इस स्थिति का चित्रण करते हुए कहते हैं '' सवा सेर गेहूँ की बदौलत उम्र भर के लिए गुलामी की बेड़ी पैरों में डालनी पड़ी। उस अभागे को अब अगर किसी विचार से संतोष होता था, तो वह यह था कि यह मेरे पूर्व जन्म का संस्कार है। स्त्री को वे काम करने पड़ते थे, जो उसने कभी न किए थे। बच्चे दाने को तरस्ते थे, लेकिन शंकर चुपचाप देखने के सिवा और कुछ न कर सकता था। वह गेहूँ के दाने किसी देवता के शाप की भाँति यावज्जीवन उसके सिर से न उतरे। ....शंकर ने विप्र जी के यहाँ 20 वर्षों तक गुलामी करने के बाद इस दुस्सार संसार से प्रस्थान किया। 120 रू. अभी तक उसके सिर पर सवार थे। पंडित जी ने उस गरीब को ईश्वर के दरबार में कष्ट देना उचित न समझा, इतने अन्यायी, इतने निर्दयी न थे। उसके जवान बेटे की गर्दन पकड़ी। आज तक वह विप्र जी के यहाँ काम करता है। उसका उद्धार कब होगा, होगा भी या नहीं, ईश्वर ही जाने।' यहाँ 'स्पष्ट है कि प्रेमचन्द शंकर और उस जैसे अनेक गरीब किसानों के शोषण का कारण उनकी मूर्खतापुर्ण धर्मनिष्ठा, धर्मभिरुता' और परम्परागत मनुवादी मूल्यों में विश्वास को ही मानते हैं। यदि शंकर विप्र महाजन को सवा सेर गेहूँ के स्थान पर सवा पाँच मन गेहूँ देने से इनकार कर देता तो महाजन उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाता, पर धर्म का मिथ्या भय उसे ऐसा नहीं करने देता। प्रेमचन्द ने अपनी इस कहानी में इसी संदेश को प्रेषित किया है और धर्म के नाम पर गरीब आदमी को लूटने वाले धर्म के ठेकेदारों की खूब खबर ली है। प्रेमचन्द धार्मिक पाखंड को देशहित के लिए हानिकारक मानते थे और इसके परम विरोधी थे।

17.5 प्रेमचन्द की व्यंग्य दृष्टि

प्रेमचन्द की कहानियों में 'व्यंग्य' की अद्‌भुत छटा दिखाई पड़ती है।समाज में व्याप्त विद्रूपताओं को उजागर करने के क्रम में तो मानो उनके व्यंग्य की धार और भी मारक हो जाती है।'सवा सेर गेहूँ' कहानी में भी उनकी यह कला अपने चरमोत्कर्ष पर दिखाई पड़ती है।यह कहानी ब्राह्मणवाद का विद्रूप प्रस्तुत करनेवाली व्यंग्य और विडम्बनापूर्ण कहानी है। इसमें धर्म के नाम पर मुफ्त तर माल उड़ानेवाले पेटू पंडितों पर करारा व्यंग्य किया गया है। इसका एक नमूना देखिए.

''एक दिन एक महात्मा ने आकर उसके द्वार पर डेरा जमाया। तेजस्वी मूर्ति थी, पीताम्बर गले में, जटा सिर पर, पीतल का कमंडल हाथ में, खड़ाउँ पैर में, ऐनक आँखों पर, सम्पूर्ण वेश उन महात्माओं का सा था, जो रइसों के प्रासादों में तपस्या, हवागाड़ियों पर देवस्थानों की परिक्रमा और योग सिद्धि प्राप्त करने के लिए रुचिकर भोजन करते थे।'' आगे गरीब

शंकर की स्थिति का चित्रण करते हुए वे कहते हैं ''घर में जौ का आटा था, वह उन्हें कैसे खिलाता प्राचीन काल में जौ का चाहे जो कुछ महत्व रहा हो, पर वर्तमान युग में जौ का भोजन सिद्ध पुरुषों के लिए दुश्पाच्य होता है। बड़ी चिन्ता हुई, महात्मा जी को क्या खिलाऊ? आखिर निश्चय किया कि कहीं से गेहूँ का आटा उधार लाउँ, पर गाँव भर में गेहूँ का आटा न मिला। गाँव में सब मनुष्य ही मनुष्य थे, देवता एक भी न था, अतएव देवताओं का खाद्य पदार्थ कैसे मिलता? सौभाग्य से गाँव के विप्र महाराज के यहाँ से थोड़े से मिल गये। उनसे सवा सेर गेहूँ उधार लिया और स्त्री से कहा कि पीस दें। महात्मा जी ने भोजन किया और लम्बी तानकर सोए।प्रातःकाल आशीर्वाद देकर अपनी राह ली।''प्रेमचन्द ने इस व्यंग्य के द्वारा महात्माओं की जो विषेशता बताई है वह हमारे सामने सबकुछ बयां कर देती है। रइसों के प्रसादों में रहना, हवागाड़ियों पर चलना और रुचिकर भोजन करना.ये तो भोगियों के लक्षण हैं योगियों के नहीं। महात्मा का वेश धारण करना, तपस्या का ढोंग रचना, देवस्थानों की परिक्रमा करना और योगसिद्धि प्राप्त करने का पाखंड रचना तो शंकर जैसे सीधे साधे, संस्कार की बेड़ियों में जकड़े, गरीब किसानों और अज्ञानी भक्तजनों को ठगने का कौशल है। इसके बिना तो उनका जादू चल ही नहीं सकता। शंकर पर इस जादू का असर कुछ ज्यादा ही दिखाई पड़ता है। कहानी के आरम्भ में ही प्रेमचन्द उसकी इस मनःस्थिति को व्यंग्य के माध्यम से चित्रित करते हुए कहते हैं ''भोजन मिला, खा लिया, न मिला चबेने पर काट दी, चबेना भी न मिला, तो पानी पी लिया और राम का नाम लेकर सो जाता। किन्तु जब कोई अतिथि द्वार पर आ जाता, तो उसे इस निवृत्ति मार्ग का त्याग करना पड़ता था। विशेषकर जब साधु-महात्मा पदार्पण करते थे, तो उसे अनिवार्यतः सांसारिकता की शरण लेनी पड़ती थी। खुद भूखा सो सकता था, पर साधु को कैसे भूखा सुलाता, भगवान के भक्त ठहरे।'' इस कहानी की विडम्बना यह है कि शंकर के द्वार पर आए साधु महाराज के भोजन का सामान भी गाँव के एक विप्र महाराज के यहाँ ही उधार के रूप में मिलता है। शंकर इस उधार को अपने जानते चुकता भी कर देता पर विप्र महाराज उसे अपने बख्शीश के खाते में डालकर उसे ऋणमुक्त करने से साफ इंकार कर देता है। शंकर इसका विरोध करते हुए कहता है ''मगर यह कोई हिसाब नहीं है। तुमने राई का पर्वत बना दिया है, ब्राह्मण हो के तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। उसी घड़ी तगादा कर लिया होता, तो आज मेरे सिर पर इतना बड़ा बोझ क्यो पड़ता? मैं तो दूँगा, लेकिन तुम्हें भगवान के यहाँ जवाब देना पड़ेगा।'' यहाँ शंकर ब्राह्मण महाराज को उसी के हथियार से परास्त करने का प्रयास करता है पर चालाक ब्राहमण आखिर एक अशिक्षित और गँवार के चंगुल में कैसे फँसता? यहाँ पर विप्र महाराज जो जवाब देते हैं उसमें प्रेमचन्द की व्यंग्य क्षमता देखते ही बनती है. ''विप्र.वहाँ का डर तुम्हें होगा, मुझे क्यों होने लगा। वहाँ तो सब अपने ही भाई बन्धु हैं। ऋशि मुनि, सब तो ब्राह्मण ही हैं; देवता ब्राह्मण हैं, जो कुछ बने बिगड़ेगी, सँभाल लेंगे।'' प्रेमचन्द यहाँ भी चुटकी लेने से बाज नहीं आते हैं। शंकर विप्र महाराज के ऋण को चुकाने के लिए न केवल जी तोड़ मेहनत ही करता है बल्कि मितव्ययिता करने का भी हर सम्भव प्रयास करता है। इस स्थिति के चित्रण में प्रेमचन्द की व्यंग्य क्षमता देखते ही बनती है।वे कहते हैं ''शंकर ने साल भर तक कठिन तपस्या की; मीयाद के पहले रुपये अदा करने का उसने व्रत सा ले लिया। दोपहर को पहले भी चूल्हा न जलता था, चबेने पर बसर होती थी, अब वह भी बंद हुआ, केवल लड़के के लिए रात को राटियाँ रख दी जातीं। पैसे रोज का तम्बाकू भी पी जाता था, यही एक व्यसन था, जिसका वह कभी त्याग न कर सका था। अब वह व्यसन भी इस कठिन व्रत की भेंट हो गया। उसने चिलम पटक दी, हुक्का तोड़ दिया और तम्बाकू की हाँड़ी चूरचूर कर डाली। कपड़े पहले भी त्याग की चरम सीमा तक पहुँच चुके थे, अब वह प्रकृति की न्यूनतम रेखाओं में आबद्ध हो गये।''यह प्रेमचन्द की वह व्यंग्य शैली है जो न केवल उन्हें विशिष्ट बनाती है बल्कि भविष्य में साहित्य के क्षेत्र में व्यंग्य का मार्ग भी प्रशस्त करती है।

17.6 कहानी का शिल्प

प्रेमचन्द की कहानी 'सवा सेर गेहूँ ' न केवल कथ्य की दृष्टि से बल्कि शिल्प की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है। प्रेमचन्द की अकसर इस बात के लिए तारीफ होती है कि वे एक कुशल किस्सागो हैं। इस कहानी में भी प्रेमचन्द का किस्सागो वाला रूप बराबर दिखाई पड़ता है। कहानी का आरम्भ ही वे कथा वाचक के रूप में कुछ इस तरह करते हैं मानो चौपाल में बैठा कोई ग्रामीण अन्य लागों को कथा सुना रहा हो। प्रेमचन्द का वह किस्सागो रूप देखिए. '' किसी गरीब गाँव में शंकर नाम का एक कुरमी किसान रहता था। सीधा.सादा, गरीब आदमी था, अपने काम से काम, न किसी के लेने में न देने में। छक्का-पंजा न जानता था, छल.प्रपंच की उसे छूत भी न लगी थी। ठगे जाने की चिन्ता न थी, ठगविद्या न जानता था। भोजन मिला, खा लिया, न मिला चबेने पर काट दी, चबेना भी न मिला, तो, पानी पी लिया और राम का नाम लेकर सो जाता। किन्तु जब कोई अतिथि द्वार पर आ जाता था, तो उसे इस निवृत्ति-मार्ग का त्याग करना पड़ता था। विशेषकर जब साधु-महात्मा पदार्पण करते थे, तो उसे अनिवार्यतः सांसारिकता की शरण लेनी पड़ती थी। खुद भूखा सो सकता था, पर साधु को कैसे भूखा सुलाता, भगवान के भक्त ठहरे।.....एक दिन संध्या समय एक महात्मा ने आकर उसके द्वार पर डेरा जमाया।''इस कहानी में आप पाएँगे कि प्रेमचन्द केवल एक सफल किस्सागो के रूप में ही नहीं दिखाई पड़ते हैं बल्कि अपनी अद्भुत कलात्मक क्षमता के द्वारा किस्सागोई और नाटकीयता का सुन्दर मिश्रण भी करते हैं। उनकी इस कहानी में किस्सागो पहले अपने वर्णन से रंगमंच की पूरी तैयारी करता है। जब रंगमंच बिलकुल तैयार हो जाता है तो उसपर पात्र अपनी सजधज के साथ उपस्थित होते हैं और अभिनय शुरू हो जाता है।'कथाकार' परदे की आड़ में छिपा रहता है और जब भी जरूरत होती है, सूत्रधार या किस्सागों के रूप में हस्तक्षेप करता रहता है। प्रेमचन्द की यह विशेषता है कि वे कहानी को प्रस्तुत करते हैं और पात्रों के मुख से उनके बीच आपसी वार्तालाप द्वारा उसे आगे बढ़ाते जाते हैं। पाठक ऐसा महसूस करता है मानों वह कान लगाकर उनकी बात सुन रहा हो बिलकुल रंगमंच की तरह। कहानी अन्ततः किस्सागो की आवाज में ही समाप्त होती है और पाठक की चेतना को इस प्रकार से झकझोर देती है कि उसका प्रभाव अन्त तक बना रहता है। शक्तिशाली अंत की दृष्टि से तो 'सवा सेर गेहूँ' निश्चित ही बेजोड़ कहानी है। इस कहानी अंत देखिए.–

''शंकर ने विप्रजी के यहाँ 20 वर्ष तक गुलामी करने के बाद इस दुस्सार संसार से प्रस्थान किया। 120रु अभी तक उसके सिर पर सवार था। पंडित जी ने उस गरीब को ईश्वर के दरबार में कष्ट देना उचित न समझा, इतने अन्यायी, इतने निर्दयी न थे। उसके जवान बेटे की गर्दन पकड़ी। आज तक वह विप्र जी के यहाँ काम करता है। उसका उद्धार कब होगा, होगा भी या नहीं, ईश्वर ही जाने।...............................पाठक! इस वृतांत को कपोल-कल्पित न समझिए। यह सत्य घटना है। ऐसे शंकरों और ऐसे विप्रों से दुनिया खाली नहीं है।''

17.7 कहानी की भाषा

प्रेमचन्द आरम्भ से ही अपने लेखन में सहज और सरल भाषा के हिमायती रहे हैं। इसे ही उन्होंने अपनी आधार भाषा बनाया और उसे अपनी कहानियों में सर्जनात्मक रूप दिया। आप देखेंगे कि प्रेमचन्द की सर्जनात्मक भाषा का कितना सुन्दर रूप 'सवा सेर गेहूँ' में दिखाई पड़ता है। प्रेमचन्द जब अपनी लय में होते हैं तब उनकी भाषा की ताकत देखते ही बनती है। शंकर के द्वार पर आए महात्मा जी का जैसा वर्णन वे अपनी सरल

भाषा में करते हैं वह एक ढोंगी और सुविधाभोगी बाबा का हू-ब-हू चित्र हमारे सामने प्रस्तुत कर देता है।प्रेमचन्द का भाषा कौशल देखिए— ''एक दिन संध्या समय एक महात्मा ने आकर उसके द्वार पर डेरा जमाया। तेजस्वी मूर्ति थी, पीताम्बर गले में, जटा सिर पर, पीतल का कमण्डल हाथ में, खड़ाउँ पैर में, ऐनक आँखों पर, सम्पूर्ण वेश उन महात्माओं का सा था, जो रइसों के प्रसादों में तपस्या, हवागाड़ियों पर देवस्थानों की परिक्रमा और योगसिद्धि प्राप्त करने के लिए रुचिकर भोजन करते थे।'' प्रेमचन्द अपनी सहज भाषा को कैसे सर्जनात्मक बनाते हैं इसका एक सुन्दर नमूना देखिए— ''आज से भाई भाई शत्रु हो जाएँगे, एक रोएगा तो दूसरा हँसेगा, एक के घर में मातम होगा तो दूसरें के घर में गुलगुले पकेंगे, प्रेम का बंधन, खून का बंधन, दूध का बंधन आज टूट जाता है। उसने भगीरथ परिश्रम से कुल मर्यादा का वृक्ष लगाया था, उसे अपने रक्त से सींचा था, उसका जड़ से उखड़ना देखकर उसके ह्रदय के टुकड़े हुए जाते थे।'' इस कहानी से कई और ऐसे उदाहरण दिए जा सकते हैं जिसमें प्रेमचन्द की भाषागत सर्जनात्मकता की लुभावनी झलक दिखाई पड़ती है। पर यह प्रेमचन्द की विशेषता है कि वे अपनी इस काव्यमयी भाषा को कहीं भी दुरूह और बोझिल नहीं होने देते हैं। वे आम आदमी की कहानी को आम आदमी की भाषा में प्रस्तुत करतें हैं जिससे उनमें जीवंतता आ जाती है।

17.8 सारांश

इस इकाई में आपने 'सवा सेर गेहूँ' नामक कहानी का अध्ययन किया और देखा कि औपनिवेशिक शासनकाल में किस प्रकार ब्राह्मणों द्वारा निर्धन किसानों का आर्थिक और पुरोहिती शोषण किया जाता था। उस काल में गरीब आदमी की सुध लेनेवाला कोई नहीं था और धूर्त ब्राह्मणों द्वारा सीधी सादी जनता को धर्म का भय दिखाकर उनका मनमाना शोषण किया जाता था। यह वह समय था जब मात्र सवा सेर गेहूँ उधार लेने के बदले भोले भाले किसान को आजीवन दास तक बनने को मजबूर कर दिया जाता था। प्रेमचन्द ने अपनी इस कहानी में बड़े मजेदार ढंग से किसानों की इस करूणामई गाथा को प्रस्तुत किया है। पर प्रेमचन्द की यह विशेषता है कि वे अपनी कहानियों में समाज में व्याप्त समस्याओं पर केवल विचार भर ही नहीं करते हैं बल्कि उस समस्या के कारणों को भी हमारे सामने प्रस्तुत कर देते हैं। प्रेमचन्द इस कहानी में स्पष्ट कर देते हैं कि किसानों के शोषण का सबसे बड़ा कारण उनका अज्ञानी, निरक्षर और अंधविश्वासी होना है। वे एक जगह कहते हैं ''हम पढ़े-लिखे आदमी होते तो कह देते, अच्छी बात है, ईश्वर के घर ही देंगे; वहाँ की तौल यहाँ से कुछ बड़ी तो न होगी। कम से कम इसका कोई प्रमाण हमारे पास नहीं, फिर उसकी क्या चिंता। किन्तु शंकर इतना तार्किक, इतना व्यवहार चतुर न था। एक तो ऋण और भी ब्राह्मण का बही में नाम रह गया तो सीधे नरक में जाऊँगा, इस ख्याल से ही उसे रोमांच हो गया''। प्रेमचन्द ने अपनी इस कहानी में एकदम साफ कर दिया है कि यह धर्मभीरुता ही किसानों के शोषण का कारण रही है। वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं हैं और वे अपनी अज्ञानता के कारण यह नहीं जानते कि स्वर्ग नरक कुछ नहीं होता। यह सब तो ब्राह्मणों की रची माया है ताकि इसका सहारा लेकर शंकर जैसे भोले भाले किसानों को असानी से ठगा जा सके। प्रेमचन्द का यह मानना था कि किसानों को अपने शोषण के विरूद्ध खुद खड़ा होना होगा। इसके लिए उन्हें अज्ञान और अंधकार के कुँए से बाहर आना होगा।पर समस्या यह थी कि औपनिवेशिक शासन काल में यह असंभवप्राय था। औपनिवेशिक शासन व्यवस्था ने अपनी फूट डालो और शासन करो की नीति के तहत ही इस तरह की कुरीतियों को पनपने का भरपूर अवसर दिया था ताकि वह निश्चिंत होकर हमपर राज कर सके। प्रेमचन्द एक सजग प्रहरी की तरह अंग्रेजों की इस साजिश को भाँप चुके थे और इसीलिए इन्होंने उस काल में ऐसी कहानियाँ लिखीं।

17.9 अभ्यास

1. 'सवा सेर गेहूँ' कहानी में कहानीकार का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
2. 'सवा सेर गेहूँ' कहानी के तारतम्य में प्रेमचन्द की व्यंग्य दृष्टि पर प्रकाश डालिए।
3. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ कीजिए.

   क) पठित कहानी में प्रेमचन्द का शिल्प विधान

   ख) 'सवा सेर गेहूँ' की भाषा
4. पाठ के आधार पर 'सवा सेर गेहूँ' की पड़ताल कीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 18 'सद्गति' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 प्रेमचंद की कहानियों में दलित

18.3 आधुनिक दलित संदर्भ और प्रेमचंद

18.4 'सद्गति' का कथा संक्षेप

18.5 कहानी का विश्लेषण

18.6 दलित चेतना के संदर्भ और 'सद्गति'

18.7 'सद्गति' के प्रमुख चरित्र

18.8 कहानी में चरित्रांकन की कला

18.9 सारांश

18.10 अभ्यास

18.0 उद्देश्य

यह एम.ए. हिन्दी के द्वितीय वर्ष के कहानी से सम्बन्धित माड्यूल के पाठ्यक्रम ''प्रेमचंद की कहानियां'' की 18वीं इकाई है। इस इकाई में प्रेमचंद की कहानी 'सद्गति' पर विचार किया जाएगा। इस इकाई का उद्देश्य सद्गति कहानी के विभिन्न पक्षों पर विस्तार पूर्वक विचार करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान सकेंगे/सकेंगी कि–

1 प्रेमचंद के समय में वर्णाश्रमधर्मी समाज व्यवस्था दलितों के प्रति कितनी क्रूर और अमानवीय थी।

2. परम्परागत हिन्दू समाज धार्मिक और आर्थिक शोषण को आधार देता है और इसके जरिए दलितों और स्त्रियों का शोषण करता है।

3 परलोक के नाम पर जारी पाखण्ड के तहत चलने वाला धार्मिक कर्मकाण्ड गरीबों और दलितों का शोषण करने का हथियार बनता है। इस धार्मिक पाखण्ड की जड़ें इतनी गहरी हैं कि गरीब और दलित स्वेच्छा से इस धार्मिक शोषण के लिए तैयार होने में गर्व का अनुभव करता है। दुखी इसका जीता-जागता प्रमाण है।

4. दलितों का यथार्थ काफी हृदय विदारक और स्तब्ध करने वाला है। वर्णाश्रमधर्मी उत्पीड़न और छुआछूत अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ है। ऐसे समाज को जितना जल्दी हो बदल जाना चाहिए।

5. वर्णाश्रमी पाखण्ड द्वारा शोषित और उत्पीड़ित समाज बहुत दिनों तक इस तरह का अनाचार सहन नहीं कर सकता। कहानी में चमार समुदाय के लोगों द्वारा दुखी की लाश उठाने से इनकार कर देना इसका प्रमाण है। प्रेमचंद के समय में दलितों में वर्णाश्रमी उत्पीड़न के विरुद्ध जागरण आने लगा था। प्रेमचंद की इस कहानी में विद्रोह के पर्याप्त संकेत मिलते हैं। प्रेमचंद दलितों में पैदा हो रही बेचैनी और प्रतिरोध

को पहचान रहे थे। इसलिए उन्होंने इस कहानी में चिखुरी गोड़ के रूप में प्रतिरोधी चेतना का संकेत देने वाले एक चरित्र की भी कल्पना की है। धार्मिक अंध श्रद्धा से ग्रसित और पंडित के श्राप से भयभीत दिखता दुखी स्वयं भी कहीं अपने मन के बहुत भीतर इस समाज के विरुद्ध आक्रोश से भरा हुआ था। इस कहानी में दुखी का आक्रोश एकाधिक प्रसंगों में बहुत गहरे संकेतों में व्यक्त होता है।

6. भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौर में प्रेमचंद औपनिवेशिक सामंती व्यवस्था की पोल खोल रहे थे और यह कहना चाहते थे कि शोषण के इन धार्मिक व्यापारों से मुक्ति के बिना औपनिवेशिक सत्ता से मुक्ति का कोई भी संघर्ष कारगर नहीं हो सकता। प्रेमचंद का उद्‌देश्य यह दिखाना था कि अब उत्पीड़न का दौर अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है। अब प्रतिरोध का दौर शुरू होना अवश्यम्भावी है।

18.1 प्रस्तावना

यों तो प्रेमचंद के रचनात्मक सरोकारों का दायरा बहुत व्यापक है, परन्तु समाज के जिन तबकों की ओर उनका ध्यान सबसे पहले गया उनमें किसान, स्त्री और दलित प्रमुख हैं। प्रेमचंद ने किसान और स्त्री के अलावा दलित जीवन संदर्भों को अपने उपन्यासों और कहानियों में उजागर ही नहीं किया, उनकी नारकीय जीवन स्थितियों के प्रति समाज का ध्यान आकर्षित किया।जिस गहरी संवेदनशीलता और पक्षधरता के साथ उन्होंने अपनी रचनाओं में किसान और स्त्री को प्रस्तुत किया वैसी ही पक्षधरता उनमें दलितों के प्रति भी दिखाई देती है। उन्होंने दलित जीवन की यातना के स्रोत– धर्मशास्त्रों तथा धर्म घुरंधरों के चेहरों को भी बेनकाब किया। मनुष्य और मनुष्य में भेद करने वाली मानसिकता और उसे आधार देने वाले धार्मिक रूढ़िवाद के पोषक चरित्रों पर भी उन्होंनें जम कर प्रहार किए। धार्मिक अमानवीयता के प्रतीक पंडित घासीराम जैसे चरित्रों के घृणास्पद चेहरों को उजागर किया। अपनी कहानियों में उन्होंने जाति और धर्म पर आधारित शोषण-उत्पीड़न को औचित्य प्रदान करने वाली वर्णाश्रमधर्मी व्यवस्था का कुत्सित यथार्थ बड़ी गहराई से उभारा है। वे उस समय लिख रहे थे जब गांधी जी का अछूतोद्धार अभियान पूरे उभार पर था। प्रेमचंद से पहले, जाति और धर्म के शोषणमूलक आचरण पर किसी ने कलम नहीं चलाई थी। भारतेन्दु आदि कुछ लेखकों के यहां सामान्य आदमी के पक्ष में लेखन का उदाहरण खोजा जा सकता है, लेकिन प्रेमचंद इन सबसे एकदम भिन्न किस्म के रचनाकार थे। दलितों और अवर्णों तथा गरीब किसानों को कहानी का केन्द्रीय विषय बनाने का श्रेय अकेले प्रेमचंद को ही जाता है।

18.2 प्रेमचंद की कहानियों में दलित

प्रेमचंद समाज के दुखी और वंचित वर्गों के कथाकार थे। उन्होंने समाज के हर उस तबके पर लेखनी चलाई, जो किसी न किसी रूप में गरीबी और सामाजिक गैर बराबरी तथा शोषण का शिकार था। उनके समय में स्त्री, किसान और दलित तीनों ही गरीबी और सामाजिक प्रताड़ना के शिकार थे। इसलिए इन तीनों ही वर्गों की जीवनस्थितियों को उन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों का मुख्य कथानक बनाया। प्रेमचंद ने देखा था कि किसान, स्त्री और दलित केवल आर्थिक रूप से ही नहीं वरन सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक रूप से भी भारतीय समाज व्यवस्था में अमानवीय शोषण के शिकार हैं। उन्होंने अनुभव किया था कि भारत में दलितों की जीवन दशा काफी हृदय विदारक है। इसके मूल में समाज में व्याप्त गैर बराबरी और सामाजिक असमानता तो है ही इसका मूल कारण वह वर्णाश्रमधर्मी व्यवस्था है जिसकी चक्की में पूरा समाज पिस रहा है।

उन्होंने धर्म और धन के बीच की साठ-गांठ को नजदीक से देखा था। इसलिए उनकी कहानियों में धर्म के ठेकेदारों के प्रति कठोर आलोचनात्मक भाव हमेशा से मौजूद रहा है। 'ठाकुर का कुआँ', 'दूध का दाम', 'मंत्र' और 'सद्गति' प्रेमचंद की दलित विषयक सर्वाधिक चर्चित कहानियां हैं। इन कहानियों में छुआछूत और वर्णाश्रमधर्मी शोषण के अमानवीय रूपों को बड़ी गहरी संवेदना के साथ उभारा गया है। प्रेमचंद की कहानियों में धर्म, दलितों के लिए एक छद्म आशा है। एक ऐसा शरणस्थल जहां वह अपनी मुक्ति की आशा से जाता है मगर जहां हर बार उसे हलाल ही होना पड़ता है। सद्गति का दुखी अच्छी साइत की लालसा में मारा जाता है। विडम्बना यह है कि दलित इस पवित्र वंधन में ही अपनी मुक्ति देखता है। मगर प्रेमचंद की दलित विषयक कहानियों में प्रतिरोध के स्वर भी कम नहीं हैं। बेशक ये स्वर बहुत कमजोर और मंद हैं। 'दूध का दाम' का मंगल खेल में हमेशा ही घोड़ा बनते रहने से इनकार कर देता है। 'ठाकुर का कुआँ' में गंगी का मन इन कथित ऊंची जातिवालों के विरुद्ध विद्रोह कर बैठता है। प्रेमचंद गंगी के मुंह से कहलाते हैं कि ये ऊंच क्या सिर्फ इसलिए हैं कि गले में तागा लपेट लेते है? चोरी ये करें, जाल फरेब ये करें, झूठे मुकदमें ये करें....किस बात में हैं हमसे ऊंचे? विद्रोह की भावना से भरी गंगी ठाकुर के कुआं से पानी भरने का साहस कर बैठती है। यह और बात है कि भय के मारे उसके हाथ से घड़ा कुएं में गिर पड़ता है। मगर सांकेतिक रूप से यहां प्रेमचंद ने दलित विद्रोह को बड़ी सफाई से चित्रित कर दिया है।

18.3 आधुनिक दलित संदर्भ और प्रेमचंद

प्रेमचंद की कहानियों में दलित संवेदना पर विचार करते हुए एक बात का ध्यान रखना होगा कि आज के संदर्भो में जिसे हम 'दलित' कहते हैं, और आज दलित शब्द की जो अवधारणा प्रचलन में है, प्रेमचंद के जमाने में न थी। दलित शब्द का समकालीन राजनीतिक तात्पर्य प्रेमचंद के जमाने से एक दम भिन्न है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि अम्बेडकर के आंदोलनों के मार्फत उस समय दलित की अवधारणा अभी निर्मित होनी शुरू हुई थी। इसलिए प्रेमचंद के समय की दलित-दृष्टि को आज के संदर्भो में आंकना भारी भूल होगी। प्रेमचंद सामंती औपनिवेशिक काल के कथाकार थे और उस समय की सीमा में ही दलितों के प्रति हो रहे अमानवीय व्यवहार के विरूद्ध संवेदनात्मक प्रतिक्रिया कर रहे थे। उसे आज के दलित विमर्शों की कसौटी पर रख कर कसना इतिहास की सीमाओं को न समझने की जिद का परिणाम ही कहा जाएगा।

समकालीन दलित साहित्य आंदोलन के पुरस्कर्ताओं का एक हिस्सा प्रेमचंद को प्रगतिशील धारा का रचनाकार मानने से इंकार करता है। जबकि दूसरी धारा उन्हें एक ऐसे रचनाकार के रूप में देखती है जिसकी प्रगतिशीलता गांधीवाद की भूमि पर अवस्थित थी। ऐसे लोगों का मानना है कि प्रेमचंद की प्रगतिशीलता गांधीवाद से आगे नहीं जाती है और उनके पास अपने समय में चल रहे स्वामी रामचंद्रदास और स्वामी अछूतानन्द के आंदोलनों की क्रांतिकारी अंतर्वस्तु को देख पाने की चेतना का अभाव था। इनका यह भी मानना है कि अम्बेडकर का दलित आंदोलन प्रेमचंद के समय में शुरू हो चुका था किन्तु वे उस आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में दलित समस्या को समझने में असमर्थ थे। आज के दलित लेखक यह सवाल भी उठाते हैं कि गांधी और अम्बेडकर के बीच चले जाति विषयक बहस से प्रेमचंद परिचित न रहे हों यह नहीं हो सकता। ऐसी दशा में अम्बेडकर के आंदोलनों के प्रति प्रेमचंद की चुप्पी को दलित लेखक संदेह से देखते हैं।

यहां प्रेमचंद के संदर्भ में दलित लेखकों के विचारों पर बहस का अवकाश नहीं है। संक्षेप में सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि आज के दलित रचनाकार यदि प्रेमचंद को

गांधीवाद तक सीमित करके देखते हैं तो यह उनकी अधूरी दृष्टि है। प्रेमचंद की दलित जीवन से जुड़ी जिन कहानियों को शिद्दत से याद किया जाता है वे सारी भारतीय राजनीति में डॉ. अम्बेडकर की सक्रियता के बाद की हैं और उनमें अम्बेडकर के आंदोलन का प्रभाव देखा जा सकता है। जिन उपन्यासों में दलित सवाल तीखी वैचारिकता से उठाये गये हैं उनमें 'रंगभूमि' प्रमुख है। दलितों के संदर्भ में गांधीवाद करुणा उपजाने और हृदय परिवर्तन से आगे नहीं जाता। लेकिन रंगभूमि का सूरदास बाकायदा एक पूँजीपति द्वारा जबरन जमीन अधिग्रहित करने के विरूद्ध जिला प्रशासन से संघर्ष करता है और मारा जाता है। सूरदास कहीं से भी गांधीवादी चरित्र नहीं है। यह बात अलग है कि सूरदास को भी हमारे आज के बहुत से दलित लेखक गांधीवादी चरित्र मान लेते हैं।

तमाम दलित लेखको से अलग, अपना विचार प्रकट करते हुए एक संदर्भ में दलित लेखक कंवल भारती ने स्वीकार किया है कि ''प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों में दलितों के प्रति सहानुभूति का स्तर सिर्फ दया भाव तक सीमित नहीं है। दया भाव समस्या को नहीं उठाता। बल्कि उसे बनाये रखने का यत्न करता है। प्रेमचंद का दलित विमर्श इस यत्न से मुक्त है। वे दलित समस्याओं की मुक्ति के लिए दलितों के पक्ष में खड़े नजर आते हैं। वे दलित समस्या को राष्ट्र की समस्या मानते हैं। प्रेमचंद के साहित्य में दलित नहीं बल्कि दलित समस्या है। प्रेमचंद जानते थे कि दलित सिर्फ अस्पृश्यता से ग्रस्त नहीं है। उसकी समस्या ज्यादा बड़ी है। वे आर्थिक शोषण, धर्मान्तरण, विषम समाज व्यवस्था, गरीबी और प्रतिरोध जैसी दलित समस्या के सभी रूपों से परिचित थे।''

प्रेमचंद की दलित-दृष्टि अपने समय से बहुत आगे थी। वे समाज में समता का स्वप्न देखने वाले ऐसे रचनाकार थे जो जानते थे कि एक जाति के रूप में दलितों को संगठित करने से उनकी मुक्ति सम्भव नहीं है। प्रेमचंद जाति के प्रश्न को वर्ग के प्रश्न के रूप में देखते थे। उनका विश्वास था कि दलितों को समाज की मुख्यधारा में लाए बिना समता का स्वप्न साकार नहीं हो सकता।

18.4 सद्गति का कथा संक्षेप

सद्गति का प्रधान पात्र दुखी दलित जाति का एक गरीब धर्मभीरु मजदूर है। वह अपनी बेटी के ब्याह की साइत विचरवाने के लिए गांव के पंडित घासीराम के यहां जाता है। जाने से पहले घर पर उनके स्वागत सत्कार औद दक्षिणा आदि का प्रबंध करने का काम अपनी पत्नी को सौंप देता है। जाते समय वह पंडित जी की गाय के लिए घास का गट्ठर भी लेता जाता है। घास का गट्ठर गाय के सामने डालने के बाद वह पंडित जी के सामने उपस्थित होकर अपनी बेटी के ब्याह की साइत विचारने का अनुरोध करता है। पंडित जी पहले व्यस्तता का बहाना बनाते हैं फिर उसके अनुरोध करने पर चलने के लिए सहमत हो जाते हैं। किन्तु चलने से पहले पंडित जी दुखी को लकड़ी की एक गांठ चीरने और भुसौले में भूसा रखने का काम सौंपते हैं। सुबह का भूखा प्यासा दुखी पहले भुसौले में भूसा रखता है फिर लकड़ी की गांठ चीरने में लग जाता है। गांठ इतनी पक्की है कि उस पर दुखी का कुल्हाड़ा नहीं चलता। थक हारकर दुखी चिलम पीने के लिए पंडितानी से आंग मांगने चला जाता है। और थोड़ा सुस्ताने लगता है। दोपहर का विश्राम कर चुनके के बाद दिन चढ़े पंडित जी दुखी के काम का जायजा लेने आते हैं और लकड़ी की गांठ को देख कर क्रोध में दुखी से कहते हैं कि लकड़ी नहीं चीरा तो साइत भी नहीं देखी जाएगी। पंडित जी के कोप से डरा हुआ, भूखा प्यासा और थका दुखी अपनी पूरी ताकत लगा कर गांठ पर कुल्हाड़ी चलाने लगता है। गांठ तो फट जाती है किन्तु गांठ के फटने के साथ ही दुखी मुर्छित होकर जमीन पर गिरता है और मर जाता है। दुखी

की लाश उठाने से दलित बस्ती के लोग इनकार कर देते है। मजबूर होकर पंडित घासीराम को स्वयं उसकी लाश घसीट कर सीवान के बाहर तक ले जाना पड़ता है। इन कथा प्रसंगों के अलावा कहानी में चिलम के लिए पंडितानी से आग मांगने और पंडितानी का आग का अंगार दुखी पर फेंकने आदि जैसे और भी प्रसंग हैं जो दलितों पर ब्राहमणों के निष्करुण अत्याचार की तरफ संकेत करते हैं। इसके साथ ही चिखुरी गोड़ जैसे पात्रों आदि के माध्यम से समाज में व्याप्त वर्णगत अंतर्विरोधों को भी संकेत रूप में उभारा गया है।

18.5 कहानी का विश्लेषण

'सद्गति' कहानी का महत्व इस बात में है कि इसके पाठ के एक से अधिक आयाम तलाशे जा सकते हैं। आमतौर पर इसे धार्मिक अंधविश्वासों पर खड़े हिन्दू समाज में पुरोहितों के धार्मिक भयादोहन की कहानी के तौर पर पढ़ा जाता है। पंडित घासीराम का दुखी के प्रति अमानवीय व्यवहार इस कहानी का प्रमुख आयाम है। एक अन्य व्याख्या के अनुसार यह धार्मिक रूढ़ियों रूपी लकड़ी की गांठ को दुखी द्वारा चीर दिये जाने की प्रतीकात्मक कथा है। नामवर सिंह कहते हैं कि ''वह लकड़ी की गांठ भी है और हिन्दू धर्म की जहरीली जाति व्यवस्था की गांठ भी है।.....यह गांठ सिर्फ गांठ नहीं है, यह एक विशाल जाति व्यवस्था का रूप ले लेती है, जिसे तोड़ना आज भी बाकी है।'' पंडित घासीराम द्वारा दुखी की लाश को ठिकाने लगाने का प्रसंग कहानी की व्याख्या के लिए एक अलग आयाम देता है। नामवर सिंह के अनुसार, ''दलित पर अत्याचार करने वाला हिन्दू-समाज आज ऐसी दशा में है कि दलित मर कर भी, अनुपस्थित रह कर भी प्रेत की तरह से हिन्दू समाज पर मंडरा रहा है। स्वयं प्रेमचंद के अनुसार इस कहानी का मर्म कहानी की इन आखिरी पंक्तियों में छिपा है- ''जीवन भर की निष्ठा और भक्ति का यही पुरस्कार है।'' कुल मिलाकर इसे पुरोहिती अत्याचार की कहानी माना जाता है। इस कहानी को अब तक चाहे जितने भी आयामों में पढ़ने का प्रयास किया गया है, सबका निष्कर्ष लगभग एक ही है। लकड़ी की गांठ चीरते चीरते दुखी के मर जाने का प्रसंग अपनी कारुणिकता में इतना हृदय विदारक है कि यह प्रसंग पाठक की संवेदना को सबसे ज्यादा घेरने में सफल होता है। कहानी का दुखांत कहानी की करुणा-विगलित व्याख्या का ऐसा मोहक आधार देता है कि हमारी सवर्ण कारुणिकता इन व्याख्याओं से ही संतुष्ट हो लेती है।

लेकिन यह एक सवर्ण व्याख्या है जिसे दलित स्वीकार नहीं करना चाहते। कहानी के सतह पर स्वतः स्फूर्त रूप से उपलब्ध ऐसी व्याख्याओं से सवर्ण पाठकों का एक बड़ा हिस्सा बड़ी सरलता से संवेदित हो जाता है और विडम्बनात्मक रूप से यह पुरोहिती शोषण की एक करुणास्पद कहानी बन कर रह जाती है। अब जबकि दलित साहित्य हिन्दी में अपनी जगह बना चुका है और प्रेमचंद को दलित दृष्टिकोण से पढ़ने की मांग उठने लगी है, इस कहानी पर विचार की सार्थकता भी इसी में है कि इसे दलित विमर्श के परिप्रेक्ष्य में भी पढ़ा और परखा जाय। यह जरूरी इसलिए भी है कि दलित शोषण ही इस कहानी का विषय है। दलित दृष्टिकोण से पढ़े जाने का एक तक्र यह है कि सद्गति को यद्यपि पुरोहिती शोषण की कहानी मान लिया जाता है, जबकि सचाई यह है कि इसमें दलितों गरीबों के धार्मिक शोषण के लिए पुरोहितों द्वारा रचा गया न कोई संजाल दिखता है न कोई ऐसा प्रयत्न, जिसके आधार पर इसे दुखी के शोषण के कुटिल संजाल की कहानी कहा जा सके। दुखी और घासीराम इस कहानी के फोकस में अवश्य हैं लेकिन शोषित और शोषक के जिस सरल सम्बन्ध में घटा कर इनको इस कहानी की व्याख्या में देखा जाता है,वह यथार्थ का सरलीकरण है। सचाई यह है कि दुखी और

पंडित घासीराम जिस समाज में रहते हैं उस समाज ने पहले से ही पुरोहिती शोषण को वैधता प्रदान कर रखी है। दुखी जिस समाज में रहता है वहां धार्मिक विधिमान्य दायरों में शोषित होने को भी श्रेष्ठ और वरेण्य माना जाता है। यह एक ऐसा समाज है जहां वर्णभेद के अनुसार सबकी दिनचर्या और कर्तव्य दैवीय रूप से निर्धारित हैं। यह दिखाने के लिए कि समाज में सभी अपने अपने वर्ण-धर्म का पालन करते हैं, प्रेमचंद ने पंडित घासीराम और दुखी के दो अलग दिनचर्याओं को दिखाया है। प्रेमचंद लिखते है,'' दुखी चमार द्वार पर झाड़ू लगा रहा था और उसकी पत्नी झुरिया गोबर से घर को लीप रही थी।'' यह दुखी की सुबह का विवरण है। दुखी के दिन की शुरुआत झाड़ू बुहारू से होती है। इसके विपरीत पंडित घासीराम की सुबह इस प्रकार शुरू होती है-''पंडित घासीराम ईश्वर के परम भक्त थे। नींद खुलते ही ईशोपासन में लग जाते। मुंह हाथ धोते आठ बज जाते। तब असली पूजा शुरू होती। आध घंटे तक चंदन रगड़ते। फिर आईने के सामने एक तिनके से माथे पर तिलक लगाते।''

कहानी में दुखी और पंडित घासीराम वर्णाश्रमी समाज द्वारा निर्धारित अपने अपने सनातन कर्तव्य से बंधे हैं और उसी के वशीभूत दुखी पंडित घासीराम के यहां साइत विचरवाने जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में सब कुछ धार्मिक नियमों के तहत होता है। कहने का अभिप्राय यह कि पंडित घासीराम और दुखी एक ऐसे सनातन सम्बन्ध में बंधे हैं जिसमें कोई किसी का शोषण नहीं करता बल्कि सब अपनी सामाजिक और वर्णाश्रमी अवस्थिति के अनुरूप फल भोगते हैं। अतः कहानी के मूल में पंडित घासीराम का अत्याचार नहीं बल्कि वह वर्णाश्रमी समाज है जो इस अत्याचार को मान्यता प्रदान करता है। पंडित घासीराम और दुखी तो वस्तुतः इस परलोकवादी समाज की फलश्रुतियां हैं– सामाजिक संरचना के दो विपरीत छोर! घासीराम दुखी का धार्मिक दोहन स्वयं दुखी के श्रद्धा और विश्वास के धरातल पर ही करता है। लकड़ी न चीरने पर पंडित घासीराम दुखी को खराब साइत विचारने का जो भय दिखाता है, वह भय तो वस्तुतः दुखी के धार्मिक मन में पहले से ही विद्यमान है। इस भय के चलते ही दुखी पं0 घासीराम के बताए कामों को करने से इंकार नहीं कर पाता और करते-करते मर जाता है। दुखी की मौत को देखते हुए घासीराम को इसका गुन्हेगार साबित जरूर किया जाता है लेकिन वस्तुस्थिति तो यही है कि दुखी अपने धार्मिक विश्वास की मौत मारा जाता है। कहानी का अंत-वाक्य भी इसी निष्कर्ष की तरफ संकेत करता है– ''यही जीवन पर्यंत की भक्ति, सेवा और निष्ठा का पुरस्कार था।''

18.6 दलित चेतना के संदर्भ और 'सद्‌गति'

कहानी का पहला (सवर्णी) पाठ पहले किया जा चुका है। कहानी का यह दूसरा (दलित) पाठ है जो पहले पाठ को निरस्त करता है। पहले पाठ में दुखी हमारी सवर्ण करुणा के केन्द्र में था। कथा नायक (या खलनायक) था घासीराम। हमारी सवर्ण कारुणिकता का घृणा-पात्र। पहले पाठ में दुखी चूँकि शोषित होने को अभिशप्त एक निरीह दलित था, इसलिए उस पाठ में उसे किसी भी परिस्थिति के विरुद्ध प्रतिक्रिया करते हुए नहीं दिखाया गया है। झूरी गोड़ की तरह यदि वह भी प्रतिरोधी स्वभाव का होता तो वह कहानी की सवर्णवादी व्याख्या के काम का न रह जाता। यहां हम जिस नये पाठ का प्रस्ताव कर रहे हैं, उसमें पंडित घासीराम को किनारे हटा दिया गया है। कहानी के फोकस में अब दुखी है। पहले पाठ में दुखी के व्यक्ति और व्यक्तित्व दोनों को छिपा दिया गया था। अब हम यहा देखेंगे कि सवर्ण शासित समाज में दुखी, यानी दलित का यथार्थ क्या था ? जिस दुखी को दीनहीन समझ लिया गया था, क्या वह यथार्थतः वैसा ही था, या उसके

भी मन के किसी गुप्त तहखाने में सवर्ण समाज के विरुद्ध कोई अस्वीकार भी पल रहा था, जिसे दलितीय विवशताओं के कारण उसने अपने अनुभव से छिपाना सीख लिया था?

दुखी को समझने के लिए हमें कहानी का पहला अनुच्छेद फिर से पढ़ना होगा। सवर्णी पाठों में इस अनुच्छेद को बिना पढ़े ही छोड़ दिया जाता है क्योंकि इसमें दुखी की दीनता पर प्रकाश डालने वाला कोई भी प्रसंग नहीं है। लेकिन दलित-व्याख्या के सूत्र इसी पहले अनुच्छेद में छिपे हैं जिसके सहारे दुखी के मनोलोक में झांका जा सकता है। पहले अनुच्छेद में पंडित घासीराम को बिठाने के लिए खटिया या आसन का प्रबंध करने और सीधा देने आदि को लेकर दुखी और झुरिया के बीच कुछ संवाद हैं। जाहिर है, यह संवाद इसलिए कि दुखी अछूत है और अछूत होने के नाते उसे इस तरह दान देना है कि पंडित की वर्ण पवित्रता भी बची रहे और दान भी दिया जा सके। अछूत होने के नाते यहां दुखी की समस्या दुहरी है। यहां से देखें तो पहले पाठ में जो कहानी दुखी की आत्मदीनता और पौरोहित्य दोहन की लगती थी, दूसरे पाठ में अशपृश्यता के दारुण बोध की कहानी में बदल जाती है। झुरिया और दुखी के संवाद में से दुखी की जो छवि उभरती है वह दूसरे अनुच्छेदों के धर्मभीत दुखी से एकदम विलोम है। पहले अनुच्छेद के दुखी को क्रोध भी आता है और उसमें सवर्णो के प्रति गुस्सा भी है। इस अनुच्छेद में उसका गुस्सा इन शब्दों में व्यक्त हुआ है: '' हमारे उपले, सेंठे, भूसा, लकड़ी थोड़े ही है कि जो चाहे उठा ले जाएं। अब सोचने की बात यह है कि सवर्णों द्वारा उसके उपले सेंठे उठा लेने पर गुस्से से भरा दुखी पुरोहिती दोहन को लेकर मन में गुस्सा न रखता हो, यह कैसे हो सकता है? प्रेमचंद ने अगर धर्मभीरु दुखी के चेतन विश्वासों को उभारा है तो उसके अवचेतन में भरे हुए उस गुस्से को भी संकेतों में दिखा दिया है जो उसकी इच्छा से स्वतंत्र अपना काम कर रहा था। इस कहानी में प्रेमचंद अस्पृश्यता के प्रति दुखी के विद्रोह को बड़े कमाल से दिखाते हैं। पहले अनुच्छेद में दुखी अपने घर में है। इसलिए वहां वह ठाकुरों-बाभनों की मनमानी पर निडर जबान से बोलता है जबकि पंडित घासीराम के दरवाजे पर निरीह प्राणी में बदल जाता है। यहां उसकी प्रतिरोधी चेतना अवचेतन में लौट आती है। वह अनचाहे ही आग के लिए पंडित के बरौठे तक चला जाता है और इस तरह अस्पृश्यता मूलक धार्मिक निषेधाज्ञाओं का उल्लंधन कर डालता है। कहानी में आग का जिक्र पहले अनुच्छेद में भी आ चुका है। क्षोभ से भरकर दुखी झुरिया से कहता है,'' ठकुराने में आग तो निकलती नहीं, खटिया क्या देंगे''। क्या संयोग है कि जो आग ठकुराने से न मिली उसे दुखी नें पंडित के बरोठे में घुसकर ले लिया। बेशक इस अपराध का उसे तत्काल 'फल' भोगना पड़ा।यह दुखी के अवचेतन का विद्रोह नहीं तो और क्या है? दुखी के अवचेतन का विद्रोह वहां भी है जब दुखी गांठ को चीरने के लिए बदहवास होकर कुल्हाड़ी चलाता है और गांठ फट जाने तक चलाता ही रहता है। पंडित घासीराम की डांट से आहत दुखी के भीतर का भय मानो भाग जाता है और उसके सामने चुनौती की तरह पड़ी लकड़ी की सदियों पुरानी गांठ अचानक उसकी अपनी ही धार्मिक भयग्रंथि का प्रतीक बन जाती है और वह उस भयग्रंथि पर प्रहार करना शुरू कर देता है। प्रेमचंद ने लिखा है, ''न जाने कौन सी गुप्त शक्ति उसके हाथों को चला रही थी.....एक-एक चोट बज्र की तरह पड़ती।'' दुखी में अचानक आ गई गुप्त शक्ति का खुलासा कहानी में चाहे न हो, लेकिन यह तो स्पष्ट ही है कि लकड़ी की गांठ फट जाने के साथ ही धर्मभीरु दुखी की धर्मभीरुता का भी अंत हो जाता है और समाज का समीकरण उलटना शुरू हो जाता है। प्रेमचंद लिखते हैं, '' लाश उठाने कोई चमार नहीं आया'' चिखुरी गोड़ की अगुवाई में शास्त्रवाद के विरुद्ध चमारों का यह पहला विद्रोह था जो हिन्दी कहानी के इतिहास में इस तरह शायद पहली बार घट रहा था।

प्रेमचंद ने बड़ी खूबसूरती से इस कहानी में पुरोहिती दोहन के विरूद्ध दलितों में अंकुरित होती हुई विद्रोह की सूक्ष्म चेतना को दिखा दिया है। 'सद्गति' का यह दूसरा पाठ, आश्चर्य है कि स्वीकृत पाठों में कहीं शुमार नहीं है। दोनों व्याख्याएँ मिलकर इस कहानी की व्याख्या को मुकम्मल बनाती हैं।

18.7 'सद्गति' के प्रमुख चरित्र

इस कहानी में कुल पांच चरित्र हैं। दुखी, झुरिया, पंडित घासीराम, पंडितानी और चिखुरी गोड़।

1. झुरिया कहानी के महत्वपूर्ण पात्र दुखी की पत्नी है। झुरिया कहानी के पहले अनुच्छेद में आती है। दुखी और झुरिया के बीच कुछ संवाद हैं जिससे कहानी में जो कुछ होने जा रहा है उसकी पृष्ठभूमि तैयार होती है। मगर कहानी में झुरिया के चरित्र को बहुत विकास नहीं मिला है। यह कहानी में अन्यत्र अनुपस्थित है।

2. पंडितानी पंडित घासीराम की पत्नी है। प्रेमचंद ने पंडितानी को एक टिपिकल ब्राहमणी के रूप में चित्रित किया है। पंडितानी पहले तो बरौठे में घुसकर आग मांगने पर दुखी पर गुस्सा होती हैं और दूर से ही उस पर आग फेंक देती है। मगर उनके मन में स्त्री सुलभ दया भी है। जो एक क्षण के लिए दुखी के प्रति उमड़ता है। वह दुखी को खाना खिलाने के बारे में पंडित से बात करती है लेकिन उसके श्रेष्ठता बोध के आगे यह दया भाव देर तक नहीं टिकता। उसके भीतर की स्त्री उसकी ब्राहमणी छवि के आगे कमजोर पड़ जाती है और कुल मिलाकर उसके भीतर दुखी के प्रति हिकारत का भाव ही बचा रहता है।

3. चिखुरी गोड़ कहानी में दी गई सूचना के अनुसार, पंडित घासीराम के गांव का रहने वाला एक निम्न वर्गीय चरित्र है। यह पंडित घासीराम को नजदीक से जानता है और उनके पंडित होने से दुखी की तरह आतंकित नहीं है। पुरोहिती दोहन के विरूद्ध उसके मन में आक्रोश है। दुखी पंडित घासीराम के जिस दिव्य रूप पर मुग्ध है,वह रूप चिखुरी गोड़ को जरा भी प्रभावित नहीं कर पाता। चिखुरी गोड़ के लिए तो घासीराम चिकने सर और फूले गालों वाला एक नाटा आदमी है जिसने रोली और चंदन का लेप लगा कर अपने चेहरे को देवताओं सरीखा दिव्य बना लिया है। जिस दिव्य रूप से दुखी आतंकित है उसे चिखुरी गोड़ एक छद्म समझता है। पंडित के दरवाजे पर दुखी को जी तोड़ काम करते हुए देख कर चिखुरी गोड़ दुखी से पूछता है– ''कुछ खाने को मिला कि काम ही कराना जानते हैं, जाके मांगते क्यों नहीं।'' दुखी के यह कहने पर कि,''कैसी बातें करते हो? बाभन की रोटी पचेगी?'' चिखुरी गोड़ प्रतिवाद करते हुए कहता है कि '' पचने को तो पच जाएगी ,पहले मिले तो!'' ''मूछों पर ताव देकर भोजन किया और आराम से सोये। तुम्हे फाड़ने का हुक्म लगा दिया। जमींदार भी खाने को कुछ देता है। हाकिम भी बेगार लेता है तो कुछ मजदूरी देता है। यह उनसे भी बढ़ गये और धर्मात्मा बनते हैं।'' यह संवाद दर्शाता है कि चिखुरी गोड़ के मन में इस निर्दयी धर्मात्मा के विरुद्ध आक्रोश है और वह अपना आक्रोश दुखी के सामने खुल कर व्यक्त भी करता है। इस कहानी में चिखुरी गोड़ का चरित्र महत्वपूर्ण इसलिए है कि इसके माध्यम से प्रेमचंद ने तत्कालीन वर्णाश्रमधर्मी पुरोहिती समाज में चलने वाले दलित दोहन के विरुद्ध पल रहे गुस्से को व्यक्त कर दिया है।

4. पंडित घासीराम वर्णाश्रमधर्मी समाज का प्रतिनिधि चरित्र है । इसके माध्यम से दलित दोहन का व्यापार चलता है। यह वर्णाश्रमी समाज में शोषण का प्रतीक है। इसका काम सिर्फ पूजन-भजन करना है। इतने से ही इसका भरण-पोषण सुख पूर्वक होता रहता है। यही इसकी जीविका का स्रोत है। प्रेमचंद नें घासीराम को निम्न शब्दों में चित्रित किया है– ''पंडित घासीराम ईश्वर के परम भक्त थे। नींद खुलते ही ईशोपासन में लग जाते। मुंह हाथ धोते आठ बजते तब असली पूजा शुरू होती, जिसका पहला भाग भंग की तैयारी थी। उसके बाद आध घंटे तक चंदन रगड़ते। फिर आईने के सामने माथे पर तिनके से तिलक लगाते.........फिर ठाकुर की मूर्ति निकाल कर नहलाते.......दस बजते बजते वह पूजन से उठते और भंग छान कर बाहर आते। तब तक दो चार जजमान द्वार पर आ जाते। ईशोपासन का तत्काल फल मिल जाता। यही उनकी खेती थी।'' पंडित घासीराम निर्दय और कांइया है। वह दुखी से बेगार भी करवाता है और उसका साइत विचारने में आनाकानी करता है। प्रेमचंद ने इस चरित्र के बहाने से समाज में व्याप्त परलोकवाद के शोषणमूलक तंत्र पर से परदा हटा दिया है।

5. दुखी के माध्यम से प्रेमचंद ने उस समाज को दर्शाया है जो परलोकवादी विश्वासों में जकड़ा हुआ है और पंडित घासीरामों के शोषण का शिकार बनता है। धर्मभीरु, परलोकनिष्ठ और ब्राहमण को जन्मना श्रेष्ठ समझने वाला दुखी ब्राहमणों को ईश्वर का प्रतिनिधि समझकर उनके हर आदेश का ईश्वराज्ञा की तरह पालन करता है और इसी आज्ञापालन के क्रम में अपनी जान तक गंवा बैठता है। दुखी की दर्दनाक मृत्यु इस कहानी को जहां एक तरफ करुणास्पद बनाती है वहीं दूसरी तरफ ऐसे परलोकवादी समाजों के विरुद्ध आक्रोश को भी जन्म देती है। दुखी के रूप में प्रेमचंद ने भारतीय समाज के एक ऐसे पात्र को प्रस्तुत किया है जिसे जीवन भर वर्णाश्रमी समाज की छद्म धार्मिकताओं की चक्की में पिसते जाना है।

18.8 कहानी में चरित्रांकन की कला

प्रेमचंद का कमाल इस बात में है कि कहानियों में वे अपनी बात चरित्रों के आपसी संवादों के माध्यम से कहते हैं और चरित्रों की विशेषताओं को भी इन्हीं संवादों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। सद्गति कहानी में पंडित घासीराम के क्रोधी स्वभाव का चित्रण प्रेमचंद ने झुरिया और दुखी के संवादों के माध्यम से किया है। पंडित जी के क्रोध का वर्णन करते हुए दुखी झुरिया से कहता है-'' कहीं ऐसा गजब न करना, नहीं तो सीधा भी जाय और थाली भी फूटे। बाबा थाली उठाकर पटक देंगे।उनको बड़ी जल्दी क्रोध चढ़ आता है। क्रोध में पंडिताइन तक को छोड़ते नहीं। लड़के को ऐसा पीटा कि आज तक टूटा हाथ लिए फिरता है।''

आमतौर पर प्रेमचंद के पात्र किसी न किसी वर्ग या प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए उनके पात्रों में प्रायः उस वर्ग के प्रतिनिधि गुण ही अधिक होते हैं। उनके पात्रों में स्वतंत्र द्वंद्वात्मक विवेक और वैयक्तिक विशिष्टता का अभाव पाया जाता है। दुखी अगर शोषित वर्ग का धर्मभीरु पात्र है तो उसमें धर्मभीरुता अपने चरम पर है। उसका समूचा व्यक्तित्व वर्गीय विशेषताओं का संपुंज है। उसमें धार्मिक पाखण्ड अथवा पुरोहिती शोषण के अन्यायी कुचक्र के विरुद्ध एक क्षण के लिए भी आक्रोश नहीं फूटता। चिखुरी गोड़ के

उकसाने पर भी नहीं । पंडितानी द्वारा आग का अंगारा फेंकने से जल जाने के बावजूद वह आक्रोशित नहीं होता अपितु इसे पंडित का घर अपवित्र करने के अपराध का फल मानता है। प्रेमचंद ने दुखी को आत्यंतिक रूप से इतना आत्महीन चित्रित किया है कि उसके व्यक्तित्व में कोई निजता नाम की चीज नहीं रह गई है। इसे दुखी के चरित्र का वर्गीय सरलीकरण सा जान पड़ता है। किन्तु इसे वर्गीय सरलीकरण मानना उचित नहीं है। प्रेमचंद की हर कहानी के पीछे कोई न कोई उद्देश्य होता है। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही कहानी कहते हैं, इसलिए उनके पात्र का चरित्रांकन उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया गया होता है। प्रेमचंद के पात्रों का सम्बन्ध बाहरी जीवन की असंगतियों से अधिक रहा है। उनका संघर्ष युग और समाज के संघर्षों में ही उभरता है। प्रेमचंद ने अपने पात्रों के मानसिक द्वंद्वों को बहुत महत्व नहीं दिया है।

इन सब सीमाओं के बावजूद प्रेमचंद के पात्र अपने समूचे चरित्र में कहीं से भी बनावटी या कृत्रिम नहीं लगते हैं। वे हमेशा हमारे आस-पास और बीच के सजीव पात्र से लगते हैं। प्रेमचंद के चरित्रांकन की यही विशेषता उन्हें महान रचनाकार बनाती है।

18.9 सारांश

सद्गति कहानी की व्याख्याओं और कथा विवरणों से स्पष्ट है कि वर्णाश्रमधर्मी सनातन समाज में ब्राह्मणों को पूजनीय और आदरणीय मानने का विश्वास इतना प्रगाढ़ है कि ब्राहमण अपनी विशिष्ट सामाजिक हैसियत के जरिए शेष समाज का धार्मिक दोहन करता है। ऐसे धार्मिक दोहन को समाज में कही से कोई चुनौती नहीं दी जाती उलटे इसे धार्मिक कृत्य के रूप मे स्वीकृति प्राप्त है। इसी धार्मिक स्वीकृति से पंडित घासीराम दुखी की श्रद्धा का दोहन करता है और दुखी उसके दरवाजे पर अंधश्रद्धा रूपी लकड़ी की सदियो पुरानी गांठ को चीरते-चीरते मर जाता है। लकड़ी की गांठ का फटना और दुखी की मौत इस बात का संकेत है कि अब अंधश्रद्धा का दौर समाप्त होने वाला है। धार्मिक शोषण का मायाजाल टूट चुका है और पंडित घासीराम के दरवाजे पर बेगार करते करते मरने के लिए अब कोई दुखी नहीं आएगा। यह कहानी हमें बताती है कि श्रद्धा और विवेक मेंसे अगर किसी एक का चुनाव करना हो तो हमे विवेक का चुनाव करना होगा। प्रेमचंद ने लिखा है कि ''उधर दुखी की लाश को खेत में गीदड़ और गिद्ध, कुत्ते और कौए नोच नोच कर खा रहे थे। यही जीवन पर्यंत की भक्ति,सेवा और निष्ठा का पुरस्कार था।'' यह कहानी हमें बताती है कि सेवा और निष्ठा का ऐसा पुरस्कार किसी भी विवेक सम्मत आदमी को स्वीकार्य नहीं होना चाहिए।

18.10 अभ्यास

1. एक कथाकार के रूप में प्रेमचंद ने इस कहानी में किस समस्या को उठाने का प्रयास किया है?

2. यह कहानी दुखी के शोषण के प्रति पाठकों के मन में किस तरह का भाव पैदा करती है– करुणा का या आक्रोश का?

3. वर्णाश्रमधर्मी समाज में दुखी जैसे चरित्र की सम्भावना पर टिप्पणी कीजिए।

4. यह कहानी 1931 में लिखी गई थी। आज के दलित विमर्श के संदर्भ में इस कहानी की प्रासंगिकता पर टिप्पणी कीजिए।

5. लकड़ी की गांठ किस चीज का प्रतीक है? गांठ का फटना क्या संदेश देता है?

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 19 'कफन' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 अमानवीय समाज के मानवीय पात्र

19.3 निकम्मापन और कामचोरीः संघर्ष की हिकमत

19.4 प्रभुवर्ग की मूल्य व्यवस्था में शामिल होने से इंकार

19.5 दलित विमर्श का मुकद्दमा

19.6 संस्कारों से मुक्ति का आख्यान : माधव के संशय और घीसू के समाधान

19.7 कबीर के निर्गुण की रोशनी में

19.8 सारांश

19.9 अभ्यास

19.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप प्रेमचन्द की 'कफन' कहानी का अध्ययन करेंगे। 'कफन' प्रेमचन्द की ही नहीं हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में एक है। 'कफन' एक बहुस्तरीय कहानी है, जिसमें घीसू और माधव की बेबसी, अमानवीयता और निकम्मेपन के बहाने सामन्ती औपनिवेशिक गठजोड़ के दौर की सामाजिक आर्थिक संरचना और उसके अमानवीय रूप का पता मिलता है। 'कफन' एक ऐसे प्रतीक की तरह उभरता है जो कर्मकाण्डवादी व्यवस्था और सामन्ती औपनिवेशिक गठजोड़ के लिए कफन तैयार करता है

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप—

- प्रेमचन्दयुगीन समाज में सामन्ती औपनिवेशिक गठजोड़ की छाया में बनी उस समाजार्थिक संरचना को समझ सकेंगे/सकेंगी जो अपने मूल चरित्र में मानव विरोधी है;
- आदर्श और यथार्थ से आगे बढ़कर कफन की उस फैंटेसी का मर्म समझ सकेंगे जो यथास्थिति के बरक्स एक नये समाज की संरचना के सूत्र देती है;
- कफन कहानी के कौशल की बारीकियों को समझ सकेंगे/सकेंगी;
- कहानी में मौजूद दलित सन्दर्भ और उसकी व्यापकता को समझ सकेंगे/सकेंगी;
- कफन में मौजूद वर्ण व्यवस्था के मूलाधार संस्कारों के विरोध की चेतना को समझ सकेंगे/सकेंगी।

19.1 प्रस्तावना

भारत वर्ष कहानियों का देश रहा है। पंचतन्त्र, कथा सरित्सागर से लेकर जातक कथाओं तक की पूरी परम्परा रही है। किस्सागोई हमारे समाज में लगातार मौजूद रही है। किन्तु साहित्यिक विधा के रूप में कहानी का विकास आधुनिक घटना है। अंग्रेजी में उपलब्ध

योरोपीय कथा साहित्य से हिन्दी कहानी के विकास की प्रेरणा मिली। हिन्दी में आरम्भिक कहानियाँ प्रायः रूमानी, कोरी कल्पना पर आधारित और उपदेशपरक थीं। प्रेमचन्द हिन्दी कहानी को उसकी वास्तविक जमीन पर ले गये। उनके आगमन के बाद हिन्दी कहानी को उसकी वास्तविक प्रकृति और परिवेश हासिल हुआ।

कथ्य के स्तर पर ही नहीं भाषा के स्तर पर भी यह परिवर्तन दिखाई पड़ता है। प्रेमचन्द उर्दू से हिन्दी में आये थे। उर्दू गद्य काफी विकसित स्थिति में था। प्रेमचन्द के साथ गद्य का सहज और प्रवहमान रूप हिन्दी कहानी में आया। प्रेमचन्द अपनी सूक्ष्म दृष्टि, विषय वैविध्य और समर्थ भाषा के प्रयोग से हिन्दी कहानी को काफी ऊँचाई पर ले गये।

प्रेमचन्द ने ढ़ाई सौ के करीब कहानियाँ लिखीं हैं। प्रेमचन्द के कहानी लेखन को चार चरणों में देख सकते हैं। 1907 से 1911 के दौर में उनकी आरम्भिक दौर की कहानियाँ हैं, जिसमें ऐतिहासिक घटनाओं, शौर्य एवं प्रेम गाथाओं और किंवदतियों पर आधारित कहानियाँ हैं। दूसरे चरण 1912 से 1918 में प्रेमचन्द के व्यापक होते सामाजिक सरोकार, विषय वैविध्य एवं शिल्पगत उत्कृष्टता का विकास दिखाई देता है। तीसरे चरण में 1919 से 1929 के बीच की कहानियाँ आती हैं जिनमें प्रेमचन्द पर गांधी और उनके विचारों का गहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है।

चौथे चरण 1930 से 1936 की कहानियों में भारतीय समाज के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं की तीखी समालोचना दिखाई पड़ती है। कफन कहानी का सम्बन्ध इसी चौथे चरण से है।

1930 के दशक में राजनीति के मंच पर अम्बेडकर आ चुके थे। गांधी के साथ उनकी तीखी बहस चल रही थी। गांधी के प्रति अपनी सारी श्रद्धा के बावजूद प्रेमचन्द तक अम्बेडकर के तक्र पहुँच रहे थे। वर्ण-व्यवस्था और उसके पाखण्ड की आलोचना से प्रेमचन्द सहमत थे। अम्बेडकर का मानना था कि वर्ण-व्यवस्था की बुनियाद ही गड़बड़ है इसलिए नये समाज के लिए वर्ण-व्यवस्था सबसे बड़ी चुनौती है, जबकि गांधी वर्ण-व्यवस्था में सुधार की गुंजाइश देख रहे थे। इस बहस में प्रेमचन्द अम्बेडकर से सहमत थे। यही कारण है कि प्रेमचन्द ने इस दौर के लेखन में वर्ण-व्यवस्था और उसके पाखण्ड पर खुला हमला कर दिया। परिणामस्वरूप प्रेमचन्द को वर्ण-व्यवस्था के हिमायती वर्ग का तीखा विरोध झेलना पड़ा। उनको घृणा का प्रचारक कहा गया। 'सद्गति', 'दूध का दाम', 'ठाकुर का कुआँ' आदि ऐसी ही कहानियाँ है। इस मामले में 'कफन' कुछ आगे बढ़ी हुई कहानी है। एक ओर यह समाज संरचना की उन खामियों को उजागर करती है जिनके आधार आर्थिक हैं तो दूसरी ओर यह कहानी वर्ण-व्यवस्था के मूलाधार संस्कारों पर चोट करती है।

'कफन' 1936 में प्रकाशित हुई। कहने की जरूरत नहीं कि इस समय प्रेमचंद अपने वैचाारिक और कलात्मक शीर्ष पर पहुंच चुके थे। उनकी वैचारिक ऊंचाई का उदाहरण मृत्यु के कुछ माह पूर्व लिखा गया 'महाजनी सभ्यता' शीर्षक लेख है, जिसमें वे पूँजीवाद का खुला विरोध करते हैं और नृशंस अमानुशिक पूँजीवाद के विनाश के प्रति आश्वस्त हैं। कलात्मक ऊँचाई का एक उदाहरण स्वयं 'कफन' कहानी है।

'कफन' तक आते-आते प्रेमचन्द की कला इतनी परिपक्व हो गयी थी। कि उनके विचार या कलात्मक अभिप्राय लेखक प्रेमचन्द पर हावी नहीं होते थे।

इसी वजह से 'कफन' को गहरे यथार्थ बोध की कहानी के रूप में पढा गया तो बहुत दिनों तक अमानवीयकरण की कहानी के रूप में पढने का प्रस्ताव भी किया जाता रहा

है। इधर दलित उभार के साथ 'कफन' को दलित-विरोधी कहानी के रूप में भी पढा जा रहा है। दलित विचारकों का आरोप है कि घीसू-माधव जैसे संवेदनहीन पात्र यथार्थ में नहीं हो सकते, इसलिए प्रेमचंद ने अपनी सवर्ण दृष्टि के नाते जानबूझकर दलितों को अपमानित करने के लिए ऐसे बेगैरत पात्रों की सृष्टि की है। फिलहाल इस बहस में जाने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसे पात्र हो सकते हैं या नहीं। यह तथ्य है कि प्रेमचन्द ने 'कफन' कहानी लिखी है और उसमें घीसू-माधव जैसे चरित्र रचे हैं। देखना यह है कि इन पात्रों की कहानी वास्तव में क्या कहती है?

'कफन' को अमानवीयकरण की कहानी बताते हुए कहा गया कि निर्मम सामन्ती व्यवस्था मनुष्य को कैसे अमानवीय बना देती है। यह अर्थ किया गया कि प्रेमचंद यह दिखाना चाहते हैं कि घीसू और माधव जिस व्यवस्था के उत्पाद थे, वह कितनी गर्हित है। इसमें एक अन्तर्निहित सन्देश है कि ऐसी व्यवस्था को बदल देना चाहिए।

वस्तुतः अपने अभिप्राय में यह एक बहुस्तरीय कहानी है, इसलिए इसके पात्र घीसू-माधव का चरित्र भी बहुस्तरीय है। एक घीसू-माधव हैं जो जाति के चमार हैं, भूमिहीन हैं, मजदूर हैं, वे देख रहे हैं कि जी तोड़ मेहनत करने वाले भी ढंग से नहीं जी पा रहे हैं, उनके लिए पेट भरना भी मुहाल है। इसलिए वे श्रम करने से बचते हैं। निकम्मापन और कामचोरी उनका चरित्र नहीं है, उनकी हिकमत है। शोषण से बचने का उपाय है। उस समय ऐसा आन्दोलन नहीं था, जो असंगठित मजदूरों-भूमिहीन किसानों को शोषण से बचाने का संघर्ष कर पाता। उनके भीतर एक विद्रोह चेतना है जो कामचोरी के रूप में, निकम्मेपन के रूप में प्रकट होती है। कभी-कभी वे उतने ही काम के लिए दोगुनी मजदूरी लेने में सफल होते हैं जितना साधारणतः एक व्यक्ति को मिलती थी। न्यूनतम मजदूरी का न कोई विधान था, न आन्दोलन। ऐसे में घीसू-माधव का संघर्ष अल्पतम मजदूरी के लिए अल्पतम काम के अघोषित नारे पर चल रहा था।

दूसरे घीसू-माधव वे हैं जो दर्द से छटपटाती बुधिया से बेपरवाह आलू खा रहे हैं। ऐसा वे अमानवीयता के नाते नहीं, बल्कि असहायता के नाते कर रहे थे। वे बेपरवाह होने को विवश थे। जब ओझा भी देखने के लिए एक रुपया मांग रहा हो और जेब में फूटी कौड़ी न हो तो 'बेपरवाह' होने के अलावा उनके पास चारा भी क्या था? प्रेमचंद लिखते हैं– ''हम तो कहेंगे घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान था और किसानों के विचार शून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठक बाजों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था।'' उनका जन्म भले ही दलित वर्ग में हुआ हो, उनका चरित्र दलित नहीं है। बैठकबाजों की कुत्सित मण्डली का चरित्र है। इसीलिए इन दोनों का आलू खाना पृष्ठभूमि में बुधिया का दर्द से छटपटाना एक दृश्य भर नहीं है। एक रूपक भी है। अपने श्रम से समाज का पेट भरने वाला हिस्सा दर्द से छटपटा रहा है और बैठकबाजों की मण्डली के सदस्य इससे बेपरवाह माल उड़ा रहे हैं।

तीसरे घीसू-माधव वे हैं जो पैसा मिलने पर कफन खरीदने की जगह शराब की दुकान पर पहुँच जाते हैं। जमकर पीते हैं, जी भर खाते हैं और अघाते हैं। इस दौरान बुधिया लगातार इनके जेहन में उपस्थित है। वे इस पर लानत भेजते हैं कि जीते जी यही रुपये मिल जाते तो दवा दारू करके उसे बचा लिया जाता। मरने के बाद समाज कफन देने को तैयार है, जीते जी दवा देने को नहीं। वे बुधिया की मेहनत याद करते हैं और उसके प्रति श्रद्धानत् होते हैं। भगवान से उसके लिए सीधे बैकुण्ठ में स्थान सुरक्षित कराते हैं। उनमें अपराधबोध और कर्तव्यबोध का मिश्रित भाव जगता है। उसके ठीक बाद दुःख और निराशा का दौर आ जाता है। माधव कहता है– 'मगर दादा! बेचारी ने बड़ा दुःख भोगा।

कितना दुःख झेलकर मरी।' ध्यान रहे यह वही माधव है, जो थोड़ी देर पहले आलू के चक्कर में दर्द से तड़पड़ाती बुधिया के पास तक नहीं गया और उसके कफन के पैसे से शराब पी गया। अब कातर होकर रोता है। उसका पिता दार्शनिक अन्दाज में समझाता है कि खुश हो बेटा कि वह इतनी जल्दी मायाजाल से मुक्त हो गयी।

19.2 अमानवीय समाज के मानवीय पात्र

'कफन' घीसू और माधव की कहानी है। माधव की पत्नी बुधिया भीतर प्रसव वेदना से छटपटा रही हैं। और बाहर घीसू और माधव अलाव के पास बैठे भुने हुए आलू खाने में लगे है। उधर बुधिया असह्य पीड़ा से चीख रही है इधर बाप-बेटा ठाकुर के यहाँ की दावत याद कर रहे हैं। वे आलू खाकर अलाव के निकट ही सो जाते हैं और छटपटाती हुई बुधिया की मृत्यु हो जाती है। सुबह बुधिया की मौत पर दोनो रोना पीटना शुरू करते हैं। कुनबे के लोग जुटते हैं, अन्तिम संस्कार की तैयारी होने लगती है। घीसू-माधव कफन आदि की व्यवस्था के लिए निकलते हैं। जमींदार से दो रुपये मिलने के बाद घीसू गाँव भर घूम कर पाँच रुपये से कुछ ज्यादा रकम जुटा लेता है। कुनबे के लोग बाकी इन्तजाम में लगे हैं। बाप-बेटा कफन के लिए शहर जाते हैं। दो चार जगह कफन देखने के बाद दोनों शराब की दुकान पर पहुँचते हैं। जी भर कर शराब पीते हैं, दावत उड़ाते हैं, बचा हुआ खाना भिखारी को दान देते हैं और फिर नशे में मस्त होकर निर्गुण गाते हैं और निढाल होकर गिर पड़ते हैं। कहानी यहीं खत्म हो जाती है।

कहानी का सरल पाठ करने पर घीसू और माधव की अमानवीयता दिखाई पड़ती है। बुधिया ने इस खानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी। इन दोनों के खाने का इंतजाम करती रहती थी। उसके प्रति उनका रवैया सचमुच असामान्य है। लेकिन उसकी वजह क्या है, आइए थोड़ा और निकट से देखें।

कहानी कुल तीन खण्डों में है। पहले खण्ड में प्रेमचन्द ने अपने चरित्र नायकों का चित्रण किया है। प्रेमचन्द स्वयं बताते हैं कि विचित्र था जीवन इनका। यह विचित्रता तीन बातों पर निर्भर थी। पहली बात यह कि दोनों परले दरजे के कामचोर थे। घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम करता। माधव आधा घण्टा काम करता तो घण्टे भर चिलम पीता। दूसरी बात कि दोनों में संतोष और धैर्य, संयम और नियम की पराकाष्ठा है। प्रेमचन्द लिखते हैं अगर दोनों साधु होते, तो उन्हें सन्तोष और धैर्य के लिए, संयम और नियम की बिल्कुल जरूरत न थी। यह तो इनकी प्रकृति थी।...घर में मिट्टी के दो चार बर्तन के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं फटे चीथड़ों से अपनी नग्नता को ढांके हुए जिये जाते थे।' तीसरी बात यह है कि दोनों पात्र विचारशील हैं वे मेहनत करने वाले अपने साथ के लोगों का हश्र देख रहे थे। 'इसलिए घीसू किसानों के विचार शून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था।' यानी जिस समाज में हाड़तोड़ मेहनत करने वाले भूखों मरने को विवश हों और आराम तलब लोग उनकी मेहनत के बूते मौज उड़ा रहे हों वहाँ घीसू का यह कदम एक विचारशील कदम है। 'आलू खाकर दोनों ने पानी पिया और वहीं अलाव के सामने अपनी धोतियाँ ओढ़कर पांव पेट में डाले सो रहे। जैसे दो बड़े-बड़े अजगर गेंडुलिया मारे पड़े हों।'

19.3 निकम्मापन और कामचोरीः संघर्ष की हिकमत

यहाँ तक आते-आते हमारे चरित्र नायक संत कवि मलूक दास की याद दिलाते हैं–

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।

दास मलूका कह गये सबके दाता राम।।

ऐसा लगता है कि घीसू सच्चे अर्थों में मलूकदास का चेला है। घीसू माधव दोनों की बेपरवाही इसी कोटि की है। कहानी में कम से कम दो वाकये इसकी पुष्टि करते हैं। माधव के यह कहने पर कि बुधिया को कहीं बाल बच्चा हुआ तो क्या होगा ? घर में तो कुछ है ही नहीं। इस पर घीसू कहता है- 'सब कुछ आ जायेगा। भगवान दें तो! इसी तरह माधव के यह पूछने पर कि कफन का इन्तजाम होगा कैसे ?, घीसू परम आश्वस्ति के साथ कहता है– 'यही लोग देंगे। हो सकता है पैसे न दें कफन ही ले आयें।' यह आसूदगी ही घीसू और माधव की कामचोरी और निकम्मेपन को सन्तों वाली इस दार्शनिक ऊंचाई तक ले जाती है।

प्रेमचन्द के दोनों विचित्र पात्र कामचोर हैं, निस्पृह हैं, बेपरवाह हैं पर विचारशील हैं। उनकी कामचोरी, निस्पृहता और बेपरवाही का सम्बन्ध उनकी विचारशीलता से है। उनकी यह विचित्रता विचारपूर्वक अर्जित की गई विचित्रता है।

सामाजिक संरचना ऐसी है कि 'किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे।' किसान और मजदूर की हालत इस कदर खस्ता केवल उसकी आर्थिक स्थिति के नाते नहीं बल्कि उसकी वर्गीय स्थिति के नाते है। किसान में 'दुर्बलताएँ' हैं। शोषक वर्ग न केवल इन दुर्बलताओं को जानता है बल्कि इन दुर्बलताओं से फायदा उठाना भी जानता है। कफन कहानी में ही नहीं अपने समूचे लेखन में प्रेमचन्द इन दुर्बलताओं के खिलाफ संघर्ष करते लड़ते दिखाई पड़ते हैं।

घीसू माधव में चाहे जितना नाकारापन हो कम से कम वे दुर्बलताएँ नहीं हैं जिनका बेजाँ फायदा उठाया जा सके । उल्टे घीसू को शोषक-शासक वर्ग की दुर्बलताओं की पहचान है और उनकी दुर्बलताओं से फायदा उठाने की समझ भी है। सारी बदहाली फटेहाली के बावजूद घीसू अगर बेपरवाह दिखता है तो अपनी इसी खासियत के चलते। शोषक वर्ग की दुर्बलताओं की समझ उसकी बेपरवाही के मूल में है।

19.4 प्रभुवर्ग की मूल्य व्यवस्था में शामिल होने से इंकार

प्रेमचन्द लिखते हैं– 'मगर इन दोनों को (मजदूरी के लिए) उसी वक्त बुलाते जब दो आदमियों से एक का काम पाकर भी सन्तोष कर लेने के सिवा कोई चारा न होता।' आमतौर पर शासक या जमीदार वर्ग के सामने किसान-मजदूर जिस तरह बेबस होते हैं घीसू माधों के सामने जमीदार वर्ग के लोग उसी तरह बेबस हैं। जाहिर है उस समय न तो काम के घण्टे तय थे और न ही न्यूनतम मजदूरी का कोई सिद्धान्त था। मजदूरी भी मनमानी थी और काम के घण्टे भी मनमाने ढंग से तय होते थे। घीसू-माधव के आस-पास न तो काम के घण्टे और न्यूनतम मजदूरी जैसी कोई बात थी और न ही कोई आन्दोलन। लेकिन घीसू-माधव ने अपनी हिकमत से ऐसा तरीका ईजाद कर लिया था जिसमें वे अधिकतम काम और न्यूनतम मजदूरी के प्रचलित व्यवहार की जगह न्यूनतम मजदूरी के लिए न्यूनतम काम की शर्त को जाने अनजाने मनवा रहे थे। 'बुधिया के आने के बाद से तो इस बात को लेकर घीसू माधव में एक अकड़ आ गयी थी और वे निर्याज भाव से दुगनी मजदूरी माँगने लगे थे।' संभव है उन्हें इसमें भी सफलता मिल गयी हो। इसके अलावा वे फटेहाल चाहे जितने हों खुद मुख्तार तो थे ही। अपने बाकी भाई बन्धुओं की तरह कोल्हू के बैल तो नहीं बने थे। यह सब इसलिए संभव हुआ कि उनके भीतर वे दुर्बलताएँ नहीं थीं जिनके आधार पर प्रभुवर्ग उनका शोषण कर सके।

'सवा सेर गेहूँ' कहानी के शंकर के जीवन की सारी त्रासदी के मूल में उसकी वे दुर्बलताएँ

हैं जिन्हें पुरोहित वर्ग ने कहीं बहुत गहरे उसकी चेतना में रोप दिया है। घीसू और माधो की चेतना उन सभी पौरोहिती और वर्ण-व्यवस्था जनित मान्यताओं को अस्वीकार कर देती है। प्रभु वर्ग की मान्यताओं का आत्मसातीकरण दलित समुदाय के दुखों के मूल में है। घीसू की चेतना इस अर्थ में विकसित है कि वह आत्मसातीकरण की इस प्रक्रिया का हिस्सा बनने से इंकार करता है। प्रेमचन्द की कोशिश है कि किसान-मजदूर-स्त्री-दलित इस आत्मसातीकरण की प्रक्रिया से बाहर आयें। वे इसका हिस्सा बनने की बजाय इसे रोक दें। इसके बगैर सच्ची मुक्ति की बात बेमानी है।

19.5 दलित विमर्श का मुकद्दमा

साहित्य का उद्देश्य निबन्ध में प्रेमचन्द सौन्दर्य का मेयार बदलने की बात करते हैं। वे सौन्दर्य की खोज में विशिष्ट की अपेक्षा साधारण की ओर जाने का प्रस्ताव करते हैं। प्रेमचन्द साहित्य को जीवन की आलोचना कहते हैं तो इसका अर्थ यह है कि जीवन में सुन्दर की खोज की जाय और असुन्दर को पहचान कर उसका निवारण किया जाय। दलित जीवन की त्रासदी और अस्पृश्यता की समस्या के मूल में समाज में प्रभुत्व प्राप्त वर्णाश्रमी मूल्य ही हैं। प्रेमचन्द इस तथ्य को अच्छी तरह समझते हैं। इसलिए प्रेमचन्द वर्णाश्रमी मूल्यों-संस्कारों पर कुठाराघात करते हैं। दलित जीवन पर प्रेमचन्द का लेखन दरअसल वर्णाश्रमी मूल्यों-संस्कारों की समीक्षा ही है। गांधी मानते थे कि वर्ण-व्यवस्था अपने आदर्श रूप में ठीक रही है। जरूरत इसकी विकृतियों को दूर करने की है। जबकि अम्बेडकर का मानना था कि सनातनी हिन्दू व्यवस्था के मूल में ही गड़बड़ी है इसलिए इसे पूरी तरह बदल देना जरुरी है। प्रेमचन्द का दलित जीवन पर केन्द्रित लेखन प्रमाणित करता है कि वे वैचारिक रूप से अम्बेडकर के साथ खड़े हैं। इसीलिए वे सनातनी हिन्दू समाज में आमूलचूल परिवर्तन की कोशिश करते दिखाई पड़ते हैं। दलित जीवन पर केन्द्रित प्रेमचन्द का लेखन इसी कोशिश का हिस्सा है। 'कफन' कहानी भी इसी कोशिश में शामिल है। 'कफन' कहानी के मुख्य पात्रों का सम्बन्ध दलित जाति से है इसलिए दलित चिन्तकों को आपत्ति है। प्रसिद्ध कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने सबसे पहले कहानी के दलित विरोधी रूप को चिह्नित किया था।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की मुख्यतः दो आपत्तियाँ हैं-बुधिया को अकेले मर जाने देना और दलित पात्रों को निकम्मा और कामचोर चित्रित करके दलितों के बारे में चली आयी सवर्ण धारणा को प्रतिष्ठित करना। बुधिया की मृत्यु सचमुच अस्वाभाविक लगती है। यह सवाल उठाया जाता है कि बुधिया के मरने के बाद कुनबे के लोग खास तौर से औरतें आती हैं, वे उस समय क्यों नहीं आतीं जब बुधिया दर्द से चीख-चिल्ला रही थी और छटपटा रही थी। कहानी के आरम्भ में ही बुधिया की मौत हो जाती है। कहानी के पहले खण्ड में प्रेमचन्द अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण करने में मशगूल हैं। तड़पती हुई बुधिया के बरक्स घीसू-माधव का विचित्र चरित्र उभरता है। वे आलू खाकर पानी पीकर धोती ओढ़कर सो जाते हैं उधर बुधिया की कराह जारी है। पूरी रात का घटनाक्रम अनकहा रह गया है। बुधिया के ठण्डे पड़ जाने की सूचना के साथ भोर होती है। प्रेमचन्द यह भी बताते हैं कि उसके पेट का बच्चा मर गया है। पूरी कहानी बुधिया की मृत्यु पर टिकी है। मृत्यु में आकस्मिकता होती है। प्रेमचन्द अपनी कहानियों में मृत्यु की आकस्मिकता का प्रयोग एक टेकनीक के रूप में करते हैं। 'गोदान' में गाय की या मातादीन और झुनिया के बेटे की मृत्यु हो या 'सद्गति' में दुखी की या फिर 'दूध का दाम' कहानी में गूदड़ और भँगी की। प्रेमचन्द गूदड़ और भँगी की मृत्यु का महज उल्लेख करके आगे बढ़ जाते हैं। इसके बाद वे कहानी के नायक मंगल का तफसील से वर्णन करते हैं। गूदड़ और भँगी की मृत्यु के बाद ही मंगल निरीहता की जीती-जागती मूर्ति बन जाता है। यह

इन्तिहां ही मंगल को वह ताकत देती है जो खेल के समय सुरेश बाबू और उनके साथियों की सारी हिकमत को ध्वस्त कर देती है। 'कफन' में बुधिया की मृत्यु इतनी आकस्मिक है कि पाठक उसे सूचना की तरह लेता है और आगे बढ़ जाता है। तड़पती और दर्द से कराहती बुधिया के पास कुनबे के लोग नहीं आते हैं, यह अस्वाभाविक तो है पर असंभव नहीं है। देर शाम जब घीसू और माधव आलू खाने में लगे थे– कुनबे के लोग गहरी नींद में हो सकते थे। आलू खाने के लोभ में घीसू माधव बुधिया को देखने भीतर तो जा नहीं रहे हैं वे अगल-बगल किसी को बुलाने क्या जायेंगे। और कुनबे के लोग यदि आ ही गये होते तो क्या फक्र पड़ जाता। बुधिया और बच्चे की मृत्यु को उस साधनहीनता में टाला नहीं जा सकता था। इसलिए इसी आधार पर कहानी को खारिज करना या प्रेमचन्द को कठघरे में खड़ा करना दरअसल कहानी के मूल मन्तव्य पर राख डालना है। यहाँ प्रेमचन्द न तो कुनबे के लोगों की असंवेदनशीलता उजागर कर रहे हैं और न ही ऐसा उजागर होता है। अगले दिन कुनबे के लोग ही हैं जो जुटते हैं और घीसू माधव के निकल जाने के बाद बुधिया के लाश की देख-भाल करते हैं। इसलिए सब कुछ कहानी की मांग के अनुरूप होता है।

जहाँ तक घीसू और माधव के निकम्मेपन से समूचे दलित समाज को निकम्मा और कामचोर समझे जाने की बात है, वह भी निराधार। प्रेमचन्द स्वयं अपने इन चरित्रों को 'विचित्र' कहते हैं, वे विचित्र इसलिए हैं कि जब कुनबे के लोग हाड़ तोड़-मेहनत करके भी अधनंगे और भूखे रहने पर मजबूर हैं। वहाँ इनका निकम्मापन और कामचोरी इनकी विचारशीलता का प्रमाण है। प्रेमचन्द ने कहानी में विचारशीलता और कर्मशीलता के दो स्पष्ट विभाजन किये हैं। प्रेमचन्द उस कुत्सित मण्डली को विचारशील पाते हैं जो तीन तिकड़म करके भोले-भाले मेहनतकश लोगों को छलने और लूटने में लगी है। गाँव में छोटी-मोटी चोरियाँ मसलन रात को आलू उखाड़ने मक्का तोड़ने यहाँ तक की गन्ना तोड़कर चूस जाने की घटनायें होती रहीं हैं। पेट भरने के लिए दो चार रुपये का आलू उखाड़ लेने वाला घटिया और निकृष्ट करार दिया जाता है जबकि लाखों-करोड़ों का वारा-न्यारा करने वाले सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। 'कफन' कहानी इस विडम्बना की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट करती है।

दरअसल सवर्ण समाज में काम न करना ही सम्मान का सूचक है। इसे समाज की मूल्य व्यवस्था में शामिल कर दिया है। यज्ञोपवीत धारण करने वाला हल का मूठ नहीं पकड़ सकता। बड़े लोग काम न करें यह उनका बड़प्पन है, गरीब काम न करे तो निकम्मापन। घीसू-माधव इस मूल्य व्यवस्था के विलोम हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी एक कविता में कहते हैं–

कुआँ ठाकुर का

पानी ठाकुर का

खेत-खलिहान ठाकुर के

फिर अपना क्या

गाँव/ शहर/ देश

इसे पढ़ते ही प्रेमचन्द की कहानी 'ठाकुर का कुआँ' की ये पंक्तियाँ याद आती हैं–

''ब्राह्मण देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहूजी एक के पाँच लेंगे। गरीबों का दर्द कौन समझता है। हम तो मर भी जाते हैं तो कोई दुआर पर झाँकने नहीं आता, कंधा

देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुँए से पानी भरने देंगे।'

यहाँ ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी कविता में 'ठाकुर का कुआँ' के प्रतीक का उपयोग करते हैं। ठाकुर का कुआँ सामन्ती सत्ता का प्रतीक है जिसे चुनौती देने का साहस गंगी करती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि इस प्रतीक की व्याख्या करते हैं। कुआँ ही नहीं खेत-खलिहान गली-मुहल्ले सब ठाकुर के हैं, यह यथास्थिति का बयान मात्र है। कविता जब यह सवाल करती है– 'फिर अपना क्या ?' तब वह यथास्थिति पर प्रश्न चिह्न लगाती है। 'ठाकुर का कुआँ' के प्रतीक को कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि समझते हैं और उसे अपने ढंग से रचनात्मक विस्तार देते हैं। पर विमर्शकार ओमप्रकाश वाल्मीकि कफन के प्रतीक को समझने के बजाय ऐसी चीजों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं जहाँ से उनके विमर्शकार को तर्क मिलते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि ठीक कहते हैं कि प्रेमचन्द को देवता बना दिया गया है। प्रेमचन्द को देवता बनाना जितना गलत है उतना ही गलत है उनसे देवता जैसी पूर्णता की मांग करना। प्रेमचन्द मनुष्य थे। उनसे भी चूक हो सकती है। किसी तकनीकी चूक के आधार पर कहानी के मूल मन्तव्य को नकार देना कहाँ की समझदारी है। 'लाश उठते उठते रात हो जाएगी' इस वाक्य के आधार पर कुछ सवर्ण आलोचकों ने सवाल उठाया हैं कि लाश रात में कहाँ उठती है? प्रेमचन्द को इस सच्चाई का ज्ञान नहीं था इसलिए पूरी कहानी रद्दी की टोकरी में टाल दी जाय। ओमप्रकाश वाल्मीकि भी यही तर्क देते हैं। जबकि कहानी कफन के बहाने वर्णवादी संस्कारों पर सवाल उठाती है, सामंती औपनिवेशिक गठजोड़ से पैदा हुए समाज की विकृति पर सवाल उठाती है। महज कुछ तकनीकी बातों के आधार पर इन सवालों को नजरन्दाज करना दरअसल उसी वर्णवाद को मजबूत करना है। आश्चर्य नहीं कि दलित आलोचकों और सवर्ण दृष्टि से 'कफन' कहानी की आलोचना करने वालों के तर्क एक से हैं।

रचना के सत्य को जानने के लिए हमे उससे सही सवाल पूछने चाहिए। स्पष्ट है कि दलित चिन्तकों ने अपने मन की बात को साबित करने के लिए सवाल उठाए हैं, प्रेमचन्द के आशयों से टकराने का जोखिम नहीं उठाया है। यही वजह है कि प्रेमचन्द तो अपने पात्रों के साथ खड़े होते हैं, जबकि दलित लेखक खुद उन्हें दलित वर्ग को अपमानित करने वाला मानते हैं। ध्यान से देखें तो यहाँ ओम्रप्रकाश वाल्मीकि के चिंतन पर सवर्ण चेतना हावी हो जाती है।

19.6 संस्कारों से मुक्ति का आख्यान : माधव के संशय और घीसू के समाधान

'कफन' कहानी का सम्बन्ध अन्तिम संस्कार से है। बुधिया के अन्तिम संस्कार के लिए घीसू और माधव निकलते हैं। सारे तामझाम के बाद भी कहानी में अन्तिम संस्कार नहीं हो पाता। 'कफन' कहानी यहाँ 'गोदान' उपन्यास से जुड़ती है। अन्तिम संस्कार का मामला वहाँ भी है। उपन्यास में गोदान कर्मकाण्ड के लिए धनिया की घृणा के स्वर तक पहुँची हुई विरक्ति देखने लायक है। 'कफन' कहानी में यह जिम्मेदारी घीसू और माधव के कन्धों पर आती है। 'गोदान' में धार्मिक सामाजिक आर्थिक शोषण तन्त्र के खिलाफ जूझते हुए होरी की मृत्यु होती है। जूझने की इस यात्रा में धनिया होरी के साथ है। वह देखती है कि मूल्यों मान्यताओं के साथ तालमेल बिठाकार चलने वाले होरी महतो का क्या हश्र होता है। कदम-कदम पर संघर्ष के बाद भी जीवन का यह हाल होता है। गोदान जैसा कर्मकाण्ड भी उसी शोषणतन्त्र की रचना है जिसका शिकार होरी बनता है। इसलिए धनिया का मन घृणा से भर उठता है और वह 'यही है उनका गोदान' कह कर गोदान के प्रति अपनी वितृष्णा को व्यक्त करती है। 'ठाकुर का कुआँ' कहानी की गंगी की याद आती है। उसका दिल रिवाजी पाबन्दियों के खिलाफ विद्रोह से भर गया था। दरअसल

यह लेखक प्रेमचन्द का हृदय है जो रिवाजी पाबन्दियों के खिलाफ विद्रोह से भर गया है। 'सवा सेर गेहूँ' कहानी में शंकर की यातना के मूल में वर्णवादी सोच के दायरे में विकसित उसके अपने विचार ही है। ब्राह्मण देवता ने शंकर के साथ जो धूर्तता की उसके पीछे कोई कानूनी दावा नहीं था।

उनका बल वर्णवादी सोच द्वारा फैलायी गयी कर्मफल, पुनर्जन्म लोक-परलोक जैसी धारणायें थीं जो शंकर को बाँधे हुए थीं। दलित जीवन की दुर्दशा के मूल में ऐसी धारणायें काम कर रही थीं। वर्ण-व्यवस्था के तंत्र का जिस तरह आत्मसातीकरण पूरे समाज में हुआ है प्रेमचन्द की नजर वहाँ भी है। जिस घीसू और माधव को निकम्मा और कामचोर समझा जाता है जरा देखें कि अगर शंकर की जगह घीसू होता तो क्या 'सवा सेर गेहू' कहानी की परिणति वही होती या कुछ अलग होती। ब्राह्मण देवता घीसू की वह दुर्गति कभी न कर पाते जो शंकर की हुई। प्रेमचन्द शंकर जैसे चरित्रों की सरलता और निरीहता देख रहे थे जिसका बेजा फायदा ब्राह्मण देवता उठा रहे थे। घीसू और माधव और जो भी हों ऐसे सरल और निरीह नहीं हैं। यहाँ थोड़ा ठहरकर सरलता और निरीहता पर विचार कर लें। सरलता और निरीहता विद्रोह का हथियार बन जाती है। वैसे देखें तो धीसू और माधव जैसी सरलता कहाँ मिलेगी। पेट भरने की जुगत हो जाय उसके बाद उन्हें न कुछ संग्रह करना है न कोई तीन-पाँच करना है। बस पेट भर जाय। यह तो सरलता की इन्तिहा है। निरीह इतने हैं कि मरणासन्न बुधिया के लिए कुछ भी कर पाने की स्थिति में नहीं है। जमींदार, सेठ-साहूकार को छोड़िए उसके अपने कुनबे के लोग भी उसकी खोज-खबर नहीं ले रहे हैं।

तन पर कपड़े नहीं, पेट भर भोजन नहीं, कोई पुरसाहाल। न कोई चारसाज है न कोई गम गुसार है। नहीं अब इससे ज्यादा निरीहता क्या होगी। पर दर्द का हद से गुजरना ही दवा होना है। धीसू और माधव अपनी सरलता और निरीहता को ही अपना औजार बना लेते हैं। घीसू और माधव प्रेमचन्द द्वारा रचे खास तरह के विद्रोही चरित्र हैं। पर उनका विद्रोह हमें दिखाई नहीं देता। दरअसल हम विद्रोह की एक खास मुद्रा से परिचित होते हैं जब तक वह मुद्रा दिखाई नहीं देती हम विद्रोह को देख ही नहीं पाते।

घीसू माधव का रोम-रोम रिवाजी पाबन्दियों और वर्णवादी बन्दिशों से विद्रोह करता है। यह विद्रोह उनके जीवन भर के आचरण व्यवहार में दिखाई पड़ता है। अन्त में वे बुधिया का अन्तिम संस्कार नहीं करते। कफन के पैसे से शराब पी जाते हैं। शराब पीने के बाद घीसू और माधव एक बहुत बड़े प्रश्न से टकराते हैं– 'कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चिथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिए।'

यू. आर. अनन्तमूर्ति के 'संस्कार' उपन्यास में अन्तिम संस्कार के लिए, नागरप्पा की लाश पड़ी है। उधर प्राणेशाचार्य पोथियों में, फिर हनुमान मन्दिर में समस्या का हल खोजने में हैं। इधर बस्ती के लोग अपने ढंग से अन्तिम संस्कार कर डालते हैं। उसके बाद प्राणेशाचार्य पूरे उपन्यास में अपने ब्राह्मणत्व के संस्कारों से मुक्ति के लिए भटकते हैं।

यहाँ कफन को लेकर, अन्तिम संस्कार को लेकर घीसू माधव में जो संवाद होता है, वह वृहत्तर समाज को ब्राह्मणत्व के संस्कारों से मुक्त करने वाला है। जीते जी भोजन न मिले, वस्त्र न मिले, सम्मान न मिले– मरने के बाद बैकुण्ठ जाने की चिन्ता खाये रहती है। बैकुण्ठ का टिकट अन्तिम संस्कार के समय ब्राह्मण देवता को दिये जाने वाले दान से मिलता है। यहाँ घीसू माधव मयखाने में बैठकर छककर पीते हैं, भर पेट खाते हैं, अघाते हैं और बची हुई पूरियाँ भिखारी को दान देते हैं– बैकुण्ठ में बुधिया का स्थान सुरक्षित कर देते हैं। विश्वामित्र ने त्रिशंकु को जीते जी स्वर्ग भेजने का प्रयास करके स्वर्ग और

नरक का मायाजाल रचने वालों की सत्ता को चुनौती दी थी।

यहाँ घीसू-माधव बिना अन्तिम संस्कार का पाखण्ड किये बुधिया को सीधे बैकुण्ठ भेज रहे हैं। यह जन्म से लेकर मृत्यु तक समूचे जीवन को संस्कारों में बाँध कर 'जीअतो खइहैं मुअतो खइहैं' का विधान रचने वाले ब्राह्मणवाद को चुनौती देते हैं।

19.7 कबीर के निर्गुण की रोशनी में

आरम्भ में घीसू माधव असंवेदनशील जान पड़ते हैं। कहानी के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते बुधिया के प्रति संवेदनशीलता गहन दुख में बदल जाती है। दुःख की इसी दशा में वे गाने लगते है-'ठगिनी क्यों नैना झमकावे! ठगिनी!' दुःख का चरमोत्कर्ष कबीर के इस निर्गुण में जाकर विलीन हो जाता है।

'ठगिनी क्यों नैना झमकावेः' ठगिनी! गाने के बाद वे गिर पड़ते हैं यहीं से एक बार इस कहानी का रीप्ले देखा जाए। हम पायेंगे कि कबीर का निर्गुण पूरी कहानी को नये सिरे से आलोकित करता है। इस आलोक में घीसू का बिल्कुल नया रूप दिखाई देता है। निकम्मे, कामचोर, संवेदनहीन और पियक्कड़ घीसू की आत्मा में कबीर की झलक बिजली की तरह चमक उठती है। अभाव और दुःख घीसू को उस भूमि पर ले जाता है, जहाँ से कबीर को माया और मायाजन्य विषमता का अभिज्ञान हुआ था। कबीर की माया शंकराचार्य की माया नहीं है और न ही कबीर का रहस्यवाद किसी दार्शनिक चिन्तन का परिणाम। कबीर का रहस्यवाद मायाजन्य विषमता का जवाब था। बुधिया की माया से 'मुक्ति' और 'बैकुण्ठ गमन' इस रहस्यवाद का ठेठ रूपान्तरण है। घीसू-माधव के पास 'माया' नहीं है। माया के मारे हुए हैं। माया अपनी आँखे नचा रही है, प्रलोभन दे रही है। पास नहीं आती। पर घीसू और माधव उस दशा में पहुँचे हुए हैं जहाँ दर्द इस हद से गुजरा है कि दवा हो गया है! वे अब माया की धौंस में नहीं हैं। उलटे माया की धौंस दिखा रहे हैं। दिखा रहे हैं कि वे माया के बावजूद जिन्दा हैं, वे खुश हो सकते हैं, गा सकते हैं, नाच सकते हैं, झूम सकते हैं। उनके आगे माया का कोई वश नही हैं। माया न उनका कुछ बिगाड़ सकती है, न उनकी बुधिया का, क्योंकि वे यहाँ मधुशाला में है और बुधिया वहाँ बैकुण्ठ में। बुधिया के प्रति बरती गई बेपरवाही के भीतर छुपा गहरा लगाव और दुःख यहाँ प्रकट हो रहा है।

रीप्ले को आगे बढाये और घीसू के कुछ वक्तव्यों पर गौर करें। घीसू कहता है– ''वह न बैकुण्ठ जाएगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जायेंगे जो गरीब को दोनो हाथों से लूटते हैं और अपने पाप धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिर में जल चढाते हैं?''

थोड़ा और आगे बढने पर घीसू और माधव का यह संवाद मिलता है, 'कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने का चिथड़ा भी न मिला, उसे मरने पर नया कफन चाहिए।

'कफन लाश के साथ जल ही तो जाता है? 'और क्या रखा रहता है? यही पाँच रुपये मिलते तो दवा दारू करा लेते।'

घीसू के इन कथनों को ध्यान से पढ़ें, तो इनमें कबीर की अनुगँज सुनाई देती है। इन कथनों में सामन्तवाद से ग्रस्त, संकीर्ण हिन्दू धर्म की रुढ़ियों से विद्रोह का भाव है? यही इस कहानी का सच है।

19.8 सारांश

'कफन' कहानी उस सामाजिक-आर्थिक विषमता को उजागर करती है जिसमें प्रभुवर्ग के लोग मौज कर रहे हैं और रात-दिन मेहनत करने वाले लोगों को पेट भर भोजन मुहाल है। इस विषमता का मूलाधार वर्णाश्रमी मूल्य व्यवस्था और संस्कार हैं। 'कफन' कहानी के दोनों पात्र घीसू और माधव कफन के बहाने पूरी वर्णाश्रमी संस्कार व्यवस्था पर सवाल उठाते हैं। वर्चस्वशाली समूह मूल्य व्यवस्था की व्यूह रचना करते हैं जिसमें दलित-शोषित वर्ग फंस जाता है और ताजिन्दगी उसमें पिसता रहता है। घीसू और माधो इसे अच्छी तरह समझते हैं और सामन्ती और वर्ण व्यवस्थावादी मूल्य व्यवस्था का शिकार बनने के बजाय स्वयं उस मूल्यव्यवस्था से फायदा उठाने की हिकमत और हिमाकत करते हैं। घीसू माधव सारी निरीहता दयनीयता के बावजूद सत्ताकामी दलित चरित्र के रूप में उभरते हैं। इस तरह प्रेमचन्द निरीहता से सत्ता की कामना तक की दलित चिन्तन यात्रा का पता देते हैं। कहानी यह भी बताती है कि बुधिया की लाश की अपेक्षा सामाजिक विषमता और वर्णाश्रमी मूल्य व्यवस्था के लिए कफन कहीं ज्यादा जरूरी है। एक छोटी-सी कहानी में इतने बड़े प्रश्नों को उठाना प्रेमचन्द की कहानी कला की दक्षता का प्रमाण है।

19.9 अभ्यास

1) घीसू और माधव की कामचोरी समाज के विरुद्ध नहीं है। क्या आप इससे सहमत हैं? स्पष्ट कीजिए।

2) कफन के पैसे की शराब पीकर घीसू और माधव विद्रोही चरित्र बनते हैं या पलायनवादी? तर्क सहित स्पष्ट कीजिए।

3) घीसू-माधव को बैठक बाजों का कुत्सित मंडली का सदस्य बताकर प्रेमचंद क्या संदेश देना चाहते हैं?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. *प्रेमचन्द और भारतीय समाज* – नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. *प्रेमचन्द की कहानियाँ : सादगी का सौन्दर्यशास्त्र*, सम्पादक सदानन्द शाही, अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद,
3. *भारतीय कथाकार : प्रेमचन्द* – ए. अरविंदाक्षन
4. *प्रेमचन्द की कहानियाँ* – डॉ. कृष्णचन्द लाल
5. *प्रेमचन्द* – नरेन्द्र कोहली
6. *कहानीकार प्रेमचन्द* – शिवकुमार मिश्र
7. *प्रेमचन्द और उनका युग* – रामविलास शर्मा
8. *आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द* – सत्यकाम
9. *प्रेमचन्द परिचर्चा* – सं. कल्याणमल लोढ़ा, रामनाथ तिवारी